अध्याय–4

प्रेमचन्द का युग और साहित्य

1. प्रेमचन्दयुगीन राजनीतिक आर्थिक सामाजिक परिदृश्य
2. स्वतन्त्रता पूर्व राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप
3. प्रेमचन्दयुगीन साहित्यिक परिदृश्य

अध्याय–4

प्रेमचन्द का युग और साहित्य

प्रेमचन्दयुगीन राजनीतिक परिदृश्य

प्रेमचन्द का समय 1905 से लेकर 1936 ई0 तक है। इस समय देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी, यह समय भारतीय जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का समय था। गुलामी के कारण भारत का विकास रुका हुआ था। चारों ओर अराजकता और अस्थिरता का वातावरण था। प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियों और उनके उपरान्त डॉ0 रामविलास शर्मा का विचार है–"प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। जब उन्होंने लिखना शुरू किया था तब संसार पर पहले महायुद्ध के बादल मँडरा रहे थे जब मौत ने उनके हाथों से कलम छीन ली तब दूसरे युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। इस बीच विश्व मानव संस्कृति में बहुत से परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों से हिन्दुस्तान भी प्रभावित हुआ और उसने उन परिवर्तनों में सहायता भी की।"[1] अतः प्रेमचन्द के शुरूआती दौर से लेकर आखिरी दौर तक देश में अनेक राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप मानव संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिससे हिन्दुस्तान की जनता अत्यधिक प्रभावित हुई।

प्रेमचन्द का युग राजनीतिक संघर्ष का युग था, इस समय अंग्रेज़ी राज्य पूर्णतया स्थापित हो चुका था। यद्यपि भारत में राष्ट्रीय चेतना एवं राजनीतिक संघर्ष का प्रारम्भ 1857 के देशव्यापी आन्दोलन से शुरू हो चुका था, जिसे अंग्रेज़ों ने सैनिकों का विद्रोह कहा। यद्यपि यह गदर या विद्रोह न होकर अंग्रेज़ों के खिलाफ

भारतीयों की एकजुटता का प्रथम प्रयास था। सन् 1858 ई0 में महारानी विक्टोरिया की घोषणा के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और भारतीय शासन ब्रिटिश मंत्रीमण्डल के हाथ में चला गया। लेकिन महारानी विक्टोरिया के घोषणा–पत्र को पूरी तरह से कार्यरूप में परिणित नहीं किया गया, इससे भारतीयों में फिर एकबार असन्तोष जागने लगा। ब्रिटिश राज्य में कूटनीति और दमनचक्र पूरी तरह से चल रहा था। जवाहरलाल नेहरू 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखते हैं–"वह नीति, जो ब्रिटिश राज्य के युग में बराबर जानबूझकर बरती गयी, जिसमें हिन्दुस्तानियों में फूट डाली गयी और एक गिरोह को दूसरे गिरोह पर चोट पहुँचाते हुए बढ़ावा दिया गया। ब्रिटिश राज्य के शुरू के ज़माने में इस नीति को खुले तौर पर मंजूर किया और असल में एक साम्राज्यवादी ताकत के लिए यह नीति स्वाभाविक थी। राष्ट्रीय आन्दोलन की तरक्की के बाद उस नीति ने एक फ़ितरती और ज़्यादा ख़तरनाक शक़्ल ले ली और हालाँकि उस नीति की मौजूदगी को माना नहीं गया लेकिन उसे पहले से ज्यादा तेज़ी के साथ बरता गया।"[2]

अतः इन परिस्थितियों में ए0ओ0 ह्यूम जैसे कुछ व्यक्तियों ने जनता के असन्तोष को कम करने की बात कही। इस सिलसिले में वह एक ऐसी संस्था बनाना चाहते थे जो जनता और शासन में सामंजस्य स्थापित कर सके और जनता की बात को शासन तक पहुँचा सके। इसी उद्देश्य और ए0ओ0 ह्यूम की सहृदयता तथा प्रयासों की वजह से–"सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना हुई।"[3] इस दृष्टि से प्रारम्भ में कांग्रेस का उद्देश्य शासन के क्रियाकलापों की आलोचना मात्र था और अधिकतर उच्चवर्ग के लोग ही इसमें सम्मिलित थे इससे लाभ भी उन्हीं लोगों को हुआ। सरकार चाहती भी ऐसा ही थी

वह भारतीय जनता को बाँटना चाहती थी, उच्च–मध्यवर्ग, अमीर–गरीब, जाति–धर्म आदि के आधार पर। उस समय अधिकतर उच्च शिक्षित वर्ग उनसे प्रभावित भी था क्योंकि उनको सम्मान और सुख–साधन आदि देकर वह उनको अपने करीब रखना चाहती थी ताकि भारतीयों पर आसानी से राज्य कर सके।

आज हमारे समाज में जो वैमनस्य, भेदभाव की भावनाएँ हैं वह अंग्रेज़ों की देन हैं–"हमारी आज की करीब–करीब सारी बड़ी समस्याएँ, मसलन राजा और नवाब, अल्पसंख्यक समस्या, विभिन्न देशी–विदेशी स्वार्थ, उद्योग धन्धों का अभाव, खेती की अवहेलना, समाज सम्बन्धी नौकरियों का बेहद पिछड़ापन और जनता की भयंकर गरीबी, ब्रिटिश राज्य के दौरान ही ब्रिटिश नीति के परिणामस्वरूप ही पैदा हुई हैं।"[4] अतः स्पष्ट है कि अंग्रेज़ अपनी भेदनीति, साम्प्रदायिकता, सामन्तवाद को पकड़कर देश की जनता पर अंकुश लगाना चाहते थे। वे देश को विभिन्न जातिगत, धार्मिक व आर्थिक वर्गों में विभक्त कर देश के विकास को रोकना चाहते थे लेकिन उनकी दमन नीति से राष्ट्र को तोड़ना आसान न था। अंग्रेज़ों द्वारा फैलाये गये हिन्दू–मुस्लिम दंगों के बाद भी हिन्दू–मुस्लिम एकता थी किसान मज़दूर अपनी दयनीय स्थिति से आन्दोलन के लिए अग्रसर थे साथ ही युवा शिक्षित वर्ग पूरी तरह से अपने देश को आज़ाद कराना चाहता था। सारे देश में आन्दोलन की आग भड़क रही थी और अंग्रेज़ों की नीतियों ने इसे और भी भयंकर रूप देने में मदद की। प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' उपन्यास में इसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इस समय भी कुछ लोग यही समझ रहे थे कि अंग्रेज़ों के बिना हमारा भारत अनाथ है हम उनके बिना विकास नहीं कर सकते।

राजेन्द्र मोहन भटनागर के अनुसार–"कांग्रेस का नरम दल, जिसकी पकड़ में कांग्रेस की सम्पूर्ण व्यवस्था थी, इस समय यह मानकर चल रहा था कि परमात्मा की अनुकम्पा ही है भारत को ब्रिटिश सरकार की छत्र–छाया मिल सकी। वास्तव में अंग्रेज़ों का अन्दर से हृदय अत्यन्त कोमल और दयालु है। उनके इस देश से चले जाने से इस देश का सर्वनाश हो जायेगा।"[5] इस प्रकार कांग्रेस का नरम दल भी आरम्भ में अंग्रेज़ों का समर्थक था। वह सदैव अंग्रेज़ों को भारतीयों के लिए दयालु मानता था। उन्हें लगता था कि यदि अंग्रेज़ देश से चले गये तो देश ख़त्म हो जायेगा।

बंग–भंग आन्दोलन का देश पर प्रभाव तथा सरकार की रणनीति

अनेकों परिस्थितियों के फलस्वरूप भारत में दो प्रकार की मानसिकता कार्य कर रही थी। एक ओर कुछ लोगों द्वारा अंग्रेज़ों का समर्थन किया जा रहा था दूसरी ओर उनकी नीतियों से आन्दोलन की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। लार्ड कर्ज़न ने ऐसी नीतियाँ अपनायीं जिससे विदेशी शासन और सत्ता के विरुद्ध वैधानिक आन्दोलनों ने भी राजनीतिक आन्दोलनों का रूप ले लिया।

डॉ0 राजकुमार के अनुसार–"लार्ड कर्ज़न ने 1905 में बंगाल को दो भागों में विभक्त किया। एक भाग 'पश्चिमी बंगाली' और 'बिहार' का बना और दूसरा पूर्वी बंगाल और आसाम का। यह 'फूट डालो और राज करो' की नीति का ही परिणाम था। पश्चिमी बंगाल राजनीतिक क्रियाशीलता का केन्द्र था। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की आबादी अधिक थी उन्हें अधिक सुविधाएँ देकर राजनीतिक आन्दोलनों से पृथक रखने की गरज़ से ही लार्ड कर्ज़न ने बंगाल का विभाजन किया था लेकिन कर्ज़न की आशा पूर्ण न हो सकी। 20 जुलाई सन् 1905 को

बंग–भंग की घोषणा हुई और 7 अगस्त 1905 को उसका सक्रिय विरोध आरम्भ हो गया।"[6] अतः बंगाल में बंग–भंग के विरोध में जो आन्दोलन छिड़ा उसने बंगाल की जनता के साथ पूरे देश में नवीन क्रान्ति का संचार किया और बंगाल इस आन्दोलन से राष्ट्रीय क्षितिज पर अगली कतार के रूप में आ गया। पूरे देश में इसने एक नवीन ऊर्जा का संचार किया। इस आन्दोलन में विदेशी बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार पर अधिक बल दिया गया। अतः अब तक देश में जो राजनीति थी वह कुछ लोगों तक ही सीमित थी लेकिन बंगाल के आन्दोलन ने इसमें आमूलचूल परिवर्तन ला दिया उस समय क्रान्ति के मुख्य हिस्सेदार युवा, मज़दूर, किसान व छात्र होने लगे।

हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं–"उन दिनों राजनीति इसी ऊपर की तह के लोगों तक ही सीमित थी। बंगाल में 1906 से राष्ट्रीय आन्दोलनों ने ज़रा इस वस्तु स्थिति को झकझोर बंगाल के मध्यम श्रेणी के निचले लोगों में और कुछ हद तक जनता में भी नई जान डाल दी।"[7] अतः बंगाल में राष्ट्रीय आन्दोलन ने वहाँ के मध्यम श्रेणी के लोगों को हिलाकर रख दिया इधर कांग्रेस की नीति वैसी ही बनी हुई थी वह शासन व्यवस्था में सुधार करने के लिए सरकार से प्रार्थना करते और सरकार उनकी कुछ माँगो को मानकर या लालच देकर टालती रहती। उस समय राष्ट्रभक्ति से ज्यादा राजभक्ति का बोलबाला था। इस क्रान्ति ने बंगाल में बहुत अधिक परिवर्तन कर दिया। सरकार ने बंगभंग के विरोध को कुचलने के लिए जो नीति अपनाई, जो अत्याचार किए, उससे सरकार की मंशा का साफ़ पता चल गया कि वह केवल शासन चाहती है उसे जनता में कोई रुचि नहीं है उससे कोई उम्मीद करना बेकार है। फलतः देश में उग्र विचारधारा ने जन्म लिया। इस

विचारधारा का समर्थन विपिन चन्द्र पाल, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय कर रहे थे। एक ओर उग्रविचार धारा के लोगों का विश्वास था कि हमें अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रभावशाली आन्दोलन की आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं को महत्ता देना प्रारम्भ किया और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया, इसके विपरीत नरम दल वही पुराने विचारों पर अडिग था, वह अपनी वही पुरानी चापलूसी की नीति अपना रहा था इससे कांग्रेस में दो दल गरमदल और नरमदल बन गये। उग्रदल नरमदल से अलग हो गया।

देश में एक नयी जाग्रति आ रही थी। प्रेमचन्द भी इससे विमुख न थे उनमें भी राष्ट्रीयता कूट–कूट कर भरी थी। अमृतराय लिखते हैं–"ज़माने की रफ़्तार इस समय सचमुच तेज़ थी देश एक नयी करवट ले रहा था–वैसे ही जैसे छोटे से पैमाने पर खुद मुंशी जी की ज़िन्दगी, उनका दिल दिमाग़ एक नयी करवट ले रहा था। राष्ट्रीयता की चेतना में एक नया ज्वार आ रहा था और उस नये ज्वार को जिन लोगों ने अपने खून की गर्मी और रवानी में सबसे पहले महसूस किया उन्हीं में एक मुंशी जी भी थे।"[8] अतः प्रेमचन्द पर अपने युग और वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा उस समय उनके जो देश–भक्ति परक उपन्यास प्रकाशित हुए उसमें राष्ट्रीयता का गहरा प्रभाव है। प्रेमचन्द की यह देश–भक्ति और स्वतंत्रता को पाने की चाहत दिन–प्रतिदिन बढ़ती रही। अंग्रेज़ी सरकार को सबसे ज़्यादा ख़तरा अगर किसी से था तो वह ख़तरा हिन्दू–मुसलमानों के मिलने में था इसलिए वह इन दोनों में वैमनस्य स्थापित करना चाहती थी जिससे शासन करने में आसानी हो सके। इसके लिए उसने सन् 1906 में अंग्रेज़ों के मुख्य मददगार आग़ा खाँ के नेतृत्त्व में मुस्लिम–लीग का गठन करवाया। यद्यपि इसका प्रभाव नहीं हुआ।

प्रथम विश्व युद्ध, रूसी क्रान्ति तथा भारत पर इसका प्रभाव

सन् 1914 ई0 से लेकर 1918 ई0 तक का समय भारत में ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से राजनीतिक हलचल का समय था। इस समय पूरी दुनिया में विश्व युद्ध के बादल मँडरा रहे थे और 1914 ई0 में विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो ही गया। उधर 1917 में रूस में ज़ारशाही समाप्त करने के लिए रूसी क्रान्ति हुई जिसने पूरे विश्व पर अपना प्रभाव छोड़ा रूसी राज्य–क्रान्ति ने देश के नेता और जनता को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए नई दिशा प्रदान की। इसी समय दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी द्वारा अहिंसात्मक सत्याग्रह का सफ़ल प्रयोग भी किया गया। हिन्दू–मुसलमानों में अंग्रेज़ वैमनस्य की भावना जगाने का भरसक प्रयास करते रहे किन्तु आम जनता में ईर्ष्या–द्वेष न होकर एक जुटता बढ़ती गयी और इसके परिणामस्वरूप 1916 के कांग्रेस अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने हिस्सा लिया, यह बहुत महत्त्वपूर्ण था।

भारत में जहाँ यह घटना–चक्र चल रहा था वही दुनिया में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी 'रूस की क्रान्ति' जिसने सारे विश्व को हिलाकर रख दिया। समाजवाद का युग प्रारम्भ हुआ भारत ही क्या दुनिया के हर छोटे–बड़े आदमी पर इसका प्रभाव पड़ा। प्रेमचन्द भी इससे बच न सके उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मैं खुद सोशलिस्ट विचारों का आदमी हूँ मेरी सारी ज़िन्दगी ग़रीबों और दलितों की वकालत करते गुज़री है।"[9] प्रेमचन्द सामाजिक व्यक्ति थे इसलिए उन पर सामाजिक विचारों का प्रभाव भी अधिक पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध के कारण भारत में भुखमरी, महामारी की स्थिति बनी हुई थी। सरकार को इसकी कोई फ़िक्र न थी। भारतीय जनता की इतनी दयनीय स्थिति का कारण उसका साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, सामंतवादी और ज़मीदारी के रंग में डूबा होना भी था।

गांधी जी का आगमन

इस समय देश के राजनीतिक रंगमंच पर गांधी जी का उदय हो चुका था। जिन्होंने आकर भारतीय राजनीति में एक हलचल पैदा कर दी। जिनका भारतीय राजनीति और समाज पर व्यापक प्रभाव दिखायी दिया। जवाहरलाल नेहरू हिन्दुस्तान की कहानी में लिखते हैं–"गांधी जी ताज़ी हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे जिसने हमें पूरी तरह फैलना और गहरी साँस लेना सिखाया। वह रोशनी की उस किरण की तरह थे जो अंधकार में पैठ गई और जिसने हमारी आँखों के सामने से परदे को हटा दिया। वह उस बवंडर की तरह थे जिसने बहुत–सी चीज़ों को खास तौर से मज़दूरों के दिमाग को उलट पुलट दिया।"[10]

इस प्रकार गांधी जी जो थोड़े दिन पूर्व विदेश से आये थे भारतीय राजनीति का ठीक से अध्ययन कर रहे थे वह रोशनी की उस किरण की तरह थे जिनके आते ही भारतीय राजनीति में नया प्रकाश दिखायी दिया और जनता का परिदृश्य ही बदल गया। कोई व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सका। प्रेमचन्द की पैनी निगाह भी उन पर पड़ी उन्होंने यह मान लिया कि यह व्यक्ति कुछ अलग है। प्रेमचन्द गांधी जी से बहुत अधिक प्रभावित थे इसका प्रभाव उनकी रचनाओं पर देखने को मिलता है। जैसे 'रंगभूमि' के पात्र 'सूरदास' और 'कर्मभूमि' के पात्र 'शान्तिकुमार' पर गांधीवादी विचारधारा का पूरा प्रभाव देखा जा सकता है। इधर विश्वयुद्ध समाप्त हो गया, परन्तु भारत को कोई फ़ायदा नहीं हुआ। इसके विपरीत भारतीय जनता को और अधिक प्रताड़ित किया गया। सन् 1919 में 'रौलट बिल' आया जिसके अनुसार देश के राजनीतिक आन्दोलन को दबाने का पूरा प्रयास किया गया। कार्यकर्ताओं को फाँसी, काले पानी की सज़ा देने का पूरा अधिकार सरकार

को प्राप्त हो गया। बिल पास होते ही पूरे देश में इसका व्यापक विरोध हुआ। गांधी जी ने बिल पास होने से पहले ही कहा था कि अगर बिल पास हुआ तो सत्याग्रह छेड़ दूँगा। विश्वयुद्ध खत्म होने के बाद देश की दयनीय स्थिति पर टिप्पणी करते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखा है–"आखिर पहला महायुद्ध समाप्त हुआ और शान्ति के साथ चैन और तरक्की आने के बजाय दमनकारी कानून और पंजाब में फ़ौजी कानून आये। हमारी जनता में बेइज़्ज़ती की तीखी भावना और बेहद नाराज़गी भरी हुई थी उस वक़्त जब देश की मर्दानगी को कुचला जा रहा था और लगातार शोषण की प्रक्रिया से हमारी ग़रीबी बढ़ रही थी और हमारी शक्ति ज़ाया हो रही थी, सुधारों और नौकरियों के भारतीयकरण की लम्बी–चौड़ी बातचीत करना हमारी हंसी उड़ाना और अपमान करना था। हम लोग एक बेबस कौम बन गये थे।"[11] इस प्रकार भारतीय जनता हर प्रकार से शोषित हो रही थी चारों ओर एक बेबसी का माहौल बन गया था। इधर गांधी जी ने सत्याग्रह किया सारे देश में उपवास रखे गये, प्रार्थनाएँ की गयीं, हड़तालें हुईं। हड़ताल बहुत ज़बरदस्त हुई। हिन्दू और मुसलमान दोनों भाई–चारे के साथ सत्याग्रह में सम्मिलित हुए। सत्याग्रह दिन–प्रतिदिन अपेक्षाकृत अधिक वेग से बढ़ता जा रहा था इससे देश की स्वाधीनता प्राप्ति को अधिक बल मिला। यह क्रान्ति पूरी तरह से अहिंसक थी। अंग्रेज़ी सरकार इन आन्दोलनों को समाप्त करने की भरपूर कोशिश कर रही थी। इसी का एक रूप था 13 अप्रैल 1919 को जलियाँवाला बाग़ की घटना। इसमें सरकार ने असहाय लोगों के ख़ून से होली खेली। यह पूर्व नियोजित काण्ड माना जाता है। साथ ही मुसलमानों और अंग्रेज़ों के मध्य आन्दोलन का एक कारण धर्म भी था। डॉ0 शीला गुप्ता के अनुसार–"अंग्रेज़ों ने तुर्की के ख़लीफ़ा के विरूद्ध जो

कदम उठाये थे उनके कारण मुसलमानों में विद्वेष की भावना काफ़ी बढ़ गयी थी वे भी अंग्रेज़ी शासन का विरोध करने के लिए उतावले हो रहे थे।"[12] अतः तुर्की खलीफा अहमद कमाल पाशा का विरोध देखकर मुसलमान अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने को और तैयार हो गये।

गांधी जी का कांग्रेस में प्रवेश और विभिन्न आन्दोलनों की शुरूआत

गांधी जी ने कांग्रेस में जैसे ही कदम रखा उनके व्यक्तित्व का प्रभाव कांग्रेस के कामकाज पर दिखायी दिया। नेशनल कांग्रेस को एक निश्चित मार्ग गांधी जी ने दिया। गांधी जी ने बेजान कांग्रेस में एक नयी जान फूँक दी "कांग्रेस संस्था में गाँधी जी पहली बार दाखिल हुए और फौरन ही उस संस्था के विधान में पूरी तरह तब्दीली आयी। उन्होंने कांग्रेस को लोकतंत्री और सार्वजनिक संस्था बना दिया।"[13] अतः गांधी जी का कांग्रेस में प्रवेश होते ही कांग्रेस एक सार्वजनिक संस्था के रूप में उभर कर सामने आयी जिसके द्वारा वैधानिक तब्दिलियाँ हुईं। इसके अतिरिक्त इस समय पूरे देश में अस्थिरता का माहौल था। कांग्रेस अब एक मज़बूत जनसंगठन बनता जा रहा था। गांधी जी के नेतृत्त्व में चलाये गये आन्दोलन ने जन–आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया था। कलकत्ता कांग्रेस (1920) के अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव पारित हुआ। विदेशी माल की होली जलायी गयी। सरकारी स्कूल, कॉलेजों को बन्द किया गया, अदालतों, कौंसिलों का बहिष्कार किया गया। असहयोग के इस कार्यक्रम में महात्मा गांधी का विशिष्ट व्यक्तित्व जुड़ा हुआ था। आन्दोलन के समय विद्यार्थियों ने स्कूल छोड़ दिये, कौंसिलों के सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिये, वकीलों ने वकालत छोड़ दी, सरकारी

नौकरियाँ त्याग दी गयीं। विदेशी वस्त्रों का त्याग हुआ और खादी को राष्ट्रीयता का प्रतीक माना गया।

प्रेमचन्द गांधी जी के व्यक्तित्व से तो प्रभावित थे ही उन्होंने बीस वर्ष पुरानी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। प्रेमचन्द ने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र तो दिया परन्तु कभी सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लिया। लेकिन पत्र पत्रिकाओं, लेखों के माध्यम से सरकार की कड़ी आलोचना करते रहे। गांधी जी का अन्दोलन लोक–जागरण का आन्दोलन था इस बात से अंग्रेज़ गर्वनर भी भली–भाँति परिचित थे। जब गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें छः वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया तब देश में पुनः अराजकता का वातावरण उत्पन्न हो गया। क्रान्तिकारी नवयुवक पुनः हिंसात्मक कार्य करने लगे। हिन्दू–मुस्लिम एकता भंग हो गयी। लेकिन इस समय तक मज़दूर–किसानों या यह कहें कि शोषित वर्ग में नवीन जाग्रति आयी और इसका प्रभाव बाद में देखने को मिला।

भारत में शासन व्यवस्था की जाँच करने के लिए नवम्बर 1927 ई0 में 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति हुई। उसका भारत में जमकर विरोध हुआ। कांग्रेस ने भी उसका विरोध किया। लाहौर में इसी के विरोध में लाला लाजपतराय को गम्भीर चोटें आयीं उसी कारण उनकी मृत्यु हो गयी। देश के हालात दिन–प्रतिदिन बदलते जा रहे थे। चारों तरफ़ से क्रान्ति की ज्वाला धधक रही थी। जनता पर सबसे अधिक प्रभावी गांधी जी और उनकी अहिंसावादी नीति थी। 1930 ई0 को कांग्रेस की कार्यकारिणी में अहमदाबाद में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करने का प्रस्ताव किया।

गांधी जी ने 1930 में दांडी यात्रा द्वारा 'नमक सत्याग्रह' प्रारम्भ किया, जिसमें जनता से नमक बनाने का आह्वान किया। परोक्ष रूप से उनका उद्देश्य एक ऐसा जन–आन्दोलन खड़ा करने का था जिससे जनता को अंग्रेज़ों के अत्याचारों और भारतीयों के शोषण के बारे में बताकर एकजुट कर सकें। इस आन्दोलन में देश के लाखों लोगों ने हिस्सा लिया जिसमें भारी संख्या में महिलाएँ भी थीं। इधर क्रान्तिकारियों को दमन–नीति द्वारा कुचला जा रहा था लेकिन यह क्रान्तिकारी देश के लिए हर बड़ी कुरबानी देने को तत्पर थे। भगत सिंह, सुखदेव राजगुरू को फाँसी दी गयी। जिससे जनता में रोष व्याप्त हो गया। गांधी जी के नेतृत्त्व में आन्दोलन ज़ोरों पर था सरकार इससे घबरा गई और उसने 5 मार्च 1931 ई0 को 'गांधी इरविन समझौता' किया। इसका कुछ असर दिखायी भी दिया।

जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं–"हिन्दुस्तान की परिस्थितियाँ तेज़ी से बदल रहीं थीं। तनाव जारी रहा बल्कि और भी ज्यादा हो गया। सविनय अवज्ञा के कुछ कैदी छोड़े गये। लेकिन हज़ारों कैदी जेल में ही रहे। नज़रबन्द भी जेलों में पड़े सड़ते रहे। राजद्रोहात्मक भाषणों या दूसरी राजनीतिक प्रवृत्तियों के कारण अक्सर गिरफ्तारियाँ होती थीं और आमतौर पर यह महसूस हो रहा था कि सरकार की तरफ से हमला अभी बन्द नहीं हुआ है।"[14] अतः सरकार आतंकवादियों के दमन के बहाने राजनीतिक कार्यकर्ताओं को दण्डित कर रही थी। इन परिस्थितियों में कांग्रेस ने पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन की घोषणा कर दी। इस पर 4 जनवरी सन् 1932 को गांधी जी और कांग्रेस अध्यक्ष सरदार पटेल भी गिरफ्तार कर लिये गये। फिर सारे देश में बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ हुयीं। कांग्रेस और उससे सम्बन्धित संस्थाएँ ग़ैर–कानूनी करार दी गयीं। कांग्रेस के भवनों पर सरकार ने कब्ज़ा कर लिया और

उसकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली। पूरे देश में आन्दोलन की धूम थी, स्वयं प्रेमचन्द भी इस आन्दोलन से अछूते न रहे वह अपनी तरफ़ से हर प्रकार से मदद के लिए तत्पर थे।

अमृतराय प्रेमचन्द के बारे में लिखते हैं–"मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकाँक्षा यही है कि हम स्वराज संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही मोटर बंगले की मुझे हविस नहीं, हाँ यह ज़रूर चाहता हूँ कि दो चार ऊँची कोटि की पुस्तकें लिखूँ पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य विजय ही हो।"[15] इस प्रकार प्रेमचन्द का सपना भी स्वराज्य का ही था वह अपने साहित्य द्वारा इस उद्देश्य को और दृढ़ बनाना चाहते थे।

कम्युनिस्ट और समाजवादी विचारधारा का देश पर प्रभाव

रूसी क्रान्ति के बाद से भारत में कम्युनिस्ट और समाजवादी विचारधारा का प्रभाव दिखायी देने लगा। कांग्रेस के अनेक नेताओं का रुझान भी इसी ओर था। 1935 तक आते–आते इसका प्रभाव व्यापक हो गया। इसी समय 8 अक्टूबर 1936 में लम्बी बीमारी के बाद प्रेमचन्द का निधन हो गया। अपने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' तक आते–आते प्रेमचन्द का झुकाव भी समाजवाद की ओर हो गया था।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों द्वारा स्पष्ट है कि प्रेमचन्द का युग राजनीतिक हलचल का युग था जिसमें देश में बड़े–बड़े आन्दोलन हुए। उन समस्त आन्दोलनों का एक मात्र लक्ष्य स्वतन्त्रता की प्राप्ति था तत्पश्चात् कठिन परिस्थितियों को झेलते हुए और कुछ वर्षों बाद वे अपने लक्ष्य में कामयाब हुए।

प्रेमचन्दयुगीन आर्थिक परिदृश्य

प्रेमचन्द युगीन आर्थिक परिस्थितियाँ कृषि तथा उद्योग दो मुख्य बिन्दुओं पर आधारित थी। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के यह दो बिन्दु मुख्य आधार होते हैं। प्रेमचन्द युगीन आर्थिक समाज विभिन्न परिस्थितियों में दो–चार हो रहा था जिसे उन्होंने अपने साहित्य द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

डॉ0 रक्षापुरी के अनुसार–"युग विशेष का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन परस्पर रूप से सम्बद्ध होता है। समाज के इन विभिन्न पार्श्वों को अभिव्यक्ति प्रदान करके ही कोई साहित्यकार अपने युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। प्रेमचन्द साहित्य में युगीन समाज का विशद और यथार्थ चित्र देखा जा सकता है।"[16] अतः प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास साहित्य में अपने युग के न सिर्फ सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक जीवन को अभिव्यक्ति दी बल्कि आर्थिक जीवन और उससे सम्बन्धित सभी समस्याओं पर प्रकाश डाला तथा हमारे समक्ष उन सभी समस्याओं को अपने साहित्य द्वारा यथार्थ रूप में लाने का प्रयास किया।

डॉ0 रक्षापुरी लिखती हैं– "भारतीय अर्थव्यवस्था के दो मुख्य आधार स्तम्भ हैं–कृषि और उद्योग धन्धे। प्रेमचन्द ने अपने कथा–साहित्य में भारतीय अर्थव्यवस्था के इन दोनों स्तम्भों एवं उनसे सम्बद्ध समस्याओं पर विचार किया है। साथ ही उन्होंने अर्थव्यवस्था के सक्रान्तिकाल को स्पष्ट करते हुए आर्थिक जीवन में व्याप्त वैषम्य को भी पूर्णतया उभार दिया है।"[17] भारतीय अर्थव्यवस्था के दो स्तम्भों कृषि और उद्योग–धन्धे का स्पष्ट चित्र प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में उभारा है तथा इनसे

सम्बन्धित समस्याएँ इनके उपन्यासों में जगह–जगह पर उजागर हुई हैं। प्रेमचन्द युगीन आर्थिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दु महत्त्वपूर्ण हैं –

भारतवर्ष में कृषक की समस्याएँ

सदैव से भारतीय अर्थव्यवस्था का सन्तुलन अंग्रेज़ों की स्वार्थपरक आर्थिक नीति के कारण नष्ट होता रहा, परिणामस्वरूप कृषि पर लगातार बोझ बढ़ता गया और भारतीय कृषक की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती गयी। प्रेमचन्द के हृदय में भारतीय दीन–हीन कृषकों के प्रति सच्ची सहानुभूति थी भारतीय कृषक की विवशता तथा आर्थिक दुर्दशता से वे अच्छी तरह से परिचित थे उनके उपन्यासों में नागरिक जीवन की समस्याओं के साथ–साथ ग्रामीण जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली। प्रेमचन्द कृत 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' को कृषक जीवन का महाकाव्य कहा गया। 'वरदान' और 'कायाकल्प' उपन्यासों में भी प्रेमचन्द ने भारतीय ज़मींदारों व कृषकों की समस्या पर विचार किया है।

भारतीय कृषक की आर्थिक दुर्दशा और उसका कारण

विभिन्न परिस्थितियों के चलते भारतीय कृषक की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। किसान की अनेक समस्याएँ उसकी आर्थिक दुर्दशा से उत्पन्न होती है इसमें कोई शक नहीं। गहन चिन्तन और सूक्ष्म नीरिक्षण के पश्चात् प्रेमचन्द इस नतीजे पर पहुँचे कि किसान की आर्थिक दुर्दशा में सुधार किए बिना किसी भी समस्या को हल नहीं किया जा सकता है उन्होंने किसानों की आर्थिक समस्याओं के साथ–साथ इसके कारणों पर भी प्रकाश डाला। 'वरदान' उपन्यास की विरजन मझगांव में जाकर रहती है वहाँ जाकर इसे भारतीय कृषक की समस्याओं का वास्तविक ज्ञान होता है। वह कमलाचरण को अपने पत्र द्वारा बताती है कि–"क्या

सुनती थी और क्या देखती हूँ? टूटे–फूटे फूस के झोपड़े, मिट्टी की दीवारे, घरों के सामने कूड़े–करकट के बड़े–बड़े ढेर, कीचड़ से लिपटी हुई भैसें, दुर्बल गायें, ये सब देखकर जी चाहता है कि कहीं चली जाऊँ। मनुष्यों को देखो तो उनकी शोचनीय दशा है। हड्डियाँ निकली हुई है। वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्रता का जीवित चित्र है। किसी के शरीर पर एक बेफटा वस्त्र नहीं है और कैसे भाग्यहीन कि रात–दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलती।"[18]

प्रेमचन्द उपर्युक्त उदाहरण द्वारा हमारे समक्ष कृषक जीवन की त्रासदी का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने किसान की आर्थिक दशा पर विस्तार से प्रकाश डाला है–"लखनपुर गाँव के सभी किसान दीन–हीन दशा में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सुक्खू चौधरी गाँव में सबसे सम्पन्न समझा जाता है। उसको छोड़कर गाँव में किसी के घर दोनों समय चूल्हा नहीं जलता।"[19] अतः प्रेमचन्द के लगभग सभी उपन्यास किसान के जीवन की दयनीय दशा की सच्चाई पेश करते हैं।

ज़मींदारी व्यवस्था की स्वार्थपरक नीति

किसान जीवन की त्रासदी तथा आर्थिक दुर्दशा का एक प्रमुख कारण ज़मींदारों की स्वार्थपरक नीति भी था। प्रेमचन्द युग में ज़मींदारों का किसानों पर शोषण एक बहुत भयावह समस्या रही है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के एक ज़मीदार राय कमलानन्द है–"वे प्लेग और अकाल के दिनों में भी नाच–रंग में लीन रहते हैं और इसके लिए निर्धन असामियों से रुपया वसूल करते हैं। रुपया न मिलने पर वे असामियों को हंटरो से पीटते हैं।"[20] इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने प्रमुख उपन्यास 'सेवासदन' में ज़मीदारों के शोषण को उभारा है इस उपन्यास के ज़मीदार महन्त

रामदास है जो अत्यन्त अत्याचारी प्रवृत्ति के है–"एकदिन कई महात्मा चैतू को पकड़ लाए। ठाकुर द्वारे के सामने उस पर मार पड़ने लगी। चैतू भी बिगड़ा। हाथ तो बन्धे हुए थे मुँह से लात घूँसों का जवाब देता रहा और जब तक जबान बन्द न हो गयी चुप न हुआ। इतना कष्ट देकर भी ठाकुर जी को सन्तोष न हुआ। उसी रात उसके प्राण हर लिये।"[21] अतः स्पष्ट है कि प्रेमचन्द युग में आर्थिक दुर्दशा का एक मुख्य कारण ज़मींदारों का अत्याचार व गरीब किसानों से पैसा वसूली, लगान आदि था जिसका यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों में मौजूद है।

कृषि सम्बन्धी समस्याएँ

प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन के सदैव निकट रहे इसलिए वे उनकी उन सभी समस्याओं से अच्छी तरह परिचित थे जिसके मध्य वह अपना जीवन व्यतीत करता है। प्रेमचन्द ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में एक साथ सम्मिलित होकर अर्थात् सहयोग से एकसाथ मिलकर काम करने की बात को स्वीकारा है।

आर्थिक मन्दी के समय कृषक की दशा व समस्याएँ

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अनाज के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती गयी थी। साथ ही ज़मीदारों ने भी लगान बढ़ा दिया परिणामस्वरूप किसानों की दशा में कोई विशेष सुधार तो नहीं हुआ बल्कि वह और बिगड़ गयी। समय आगे बढ़ा। सन् 1929 ई0 में विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी आई अनाज का दाम बहुत नीचे गिर गया था उस समय भी किसानों से लगान बहुत तेज़ी से वसूल किया गया। ज़मीदार अपना लगान छोड़ने को तैयार नहीं और सरकार जिसके अधीन भूमि का बहुत बड़ा भाग था जोकि एक आय का स्रोत था वह अपनी आय में किसी प्रकार कमी नहीं होने देना चाहती थी परिणामस्वरूप किसान इन दोनों के मध्य पिसता रहता था। प्रेमचन्द

ने 'प्रेमाश्रम' में किसान की इसी आर्थिक दुर्दशा का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' में आर्थिक मन्दी के समय में ज़मींदार और सरकार की अनीति, अत्याचार कृषकों की दशा तथा उनके संगठन के विरोध में किए गए आन्दोलनों का चित्रण किया है।

औद्योगिक समस्याएँ

जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के दो आधार होते हैं। पहला कृषि दूसरा उद्योग–धन्धे। अंग्रेज़ों की स्वार्थपरक आर्थिक नीति के कारण भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों और शिल्प का नाश हो गया और भारतीय अर्थव्यवस्था का ष्डयन्त्र पूर्णतया बिगड़ गया तत्पश्चात् भारत प्रथम महायुद्ध के बाद औद्योगीकरण की दिशा में बटने लगा साथ ही इसी समय भारत की अर्थव्यवस्था में नयी शक्तियाँ क्रियाशील थी इसका परिणाम यह हुआ कि औद्योगीकरण से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ सामने आयीं। प्रेमचन्द ने उस समय अर्थव्यवस्था का सूक्ष्म नीरिक्षण किया था। 'गोदान' और 'रंगभूमि' में उन्होंने औद्योगिक समस्या पर विस्तार से विचार किया है। इसके अतिरिक्त 'ग़बन' और 'प्रेमाश्रम' में भी प्रेमचन्द ने औद्योगिक समस्याओं को उठाया है।

पूँजीपतियों की मनोवृत्ति

किसी भी देश में औद्योगीकरण के साथ पूँजीपति मनोवृत्ति का भी उदय होता है औद्योगिक सभ्यता ने हमेशा समाज को दो भागों में बाँटा है एक वर्ग जोकि उद्योग धन्धों से लाभ उठाता है और दूसरा वर्ग मज़दूरों का। औद्योगीकरण के पश्चात् देश का पूरा धन थोड़े से पूँजीपतियों के हाथों में एकत्र होता जा रहा था और उनके अधिकार व शक्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। औद्योगिक समस्या

के इन सभी आवश्यक पहलुओं से प्रेमचन्द अच्छी तरह परिचित थे। उद्योगपतियों की पूँजीवादी मनोवृत्ति का उदाहरण 'रंगभूमि' के जानसेवक के माध्यम से हम देख सकते हैं। जानसेवक ताहिर अली से कहता है–"मेरा इरादा है कि म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब से मिलकर यहाँ एक शराब और ताड़ी की दुकान खुलवा दूँ। तब आस–पास के चमार यहाँ रोज़ आयेंगे और आपको उनसे मेल–जोल पैदा करने का मौका मिलेगा। आजकल इन छोटी–छोटी चालों के बग़ैर काम नहीं चलता।"[22]

उपर्युक्त सन्दर्भों व तथ्यों द्वारा स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में औद्योगिक अर्थव्यवस्था व ग्रामीण अर्थव्यवस्था दोनों के ही आर्थिक वैषम्य को प्रस्तुत किया है वह जानते थे कि समाज पर धनी वर्ग का अधिकार अधिक दिनों तक नहीं रहेगा। निम्नवर्ग में नवचेतना के निरन्तर विकास के कारण धनी वर्ग द्वारा उनका शोषण करना कठिन होता जायेगा। फलतः प्रेमचन्द ने आर्थिक साम्य को स्वस्थ्य और सुन्दर समाज का मुख्य आदर्श माना है व सदैव उसी पर बल देते रहे।

प्रेमचन्दयुगीन सामाजिक परिदृश्य

किसी युग के लिए सामाजिक स्थितियाँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं जितनी राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व साहित्यिक परिस्थितियाँ, क्योंकि समाज से ही साहित्य का निर्माण होता है और साहित्य समाज का दर्पण है। सदियों की गुलामी, क्रूर विदेशी शासन के कारण भारतीय जनमानस में आत्महीनता की भावना व्याप्त हो गयी थी प्रेमचन्द युग में चारों ओर अराजकता और निराशा का वातावरण था तथा समाज मानसिक जड़ता और निष्क्रियता की ओर अग्रसर था। आर्थिक पिछड़ेपन और अशिक्षा के कारण उसका विश्वास खण्डित हो चुका था। समाज में व्याप्त अनेकों बुराईयाँ समाज को अन्दर से दीमक की तरह खोखला करती जा रही

थीं। प्रेमचन्द युगीन सामाजिक परिदृश्य को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखेंगे–

परम्पराओं और रूढ़ियों से ग्रस्त समाज

तद्युगीन समाज में जहाँ किसान, मज़दूर तथा ग़रीब जनता का शोषण हो रहा था वहीं यह जनता समाज में फैली कुप्रथाओं, अंधविश्वासों और रूढ़ियों से बुरी तरह प्रभावित थी। लेकिन इसके साथ–साथ पूरे विश्व में जो नवजागरण चल रहा था जो चेतना जाग्रत हो रही थी उसका प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ना अनिवार्य था। पाश्चात्य सभ्यता का सम्पर्क तथा मनीषियों और समाज सुधारकों के उदय ने भारतीय समाज में गतिशीलता उत्पन्न की।

पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से उनके उन्नत विचारों का आलोक भारत पर पड़ा। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पश्चिमी संस्कृति के देश में सम्पर्क और उनके प्रभाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है–"हिन्दुस्तान पर पश्चिमी संस्कृति का आघात था जो मध्यकालीन विचारधारा से बँधा हुआ था और जो अपने ढंग से कितना ही तरक्कीयाफ़्ता या रंगाचुना हो अपनी जन्मजात ख़ामियों की वजह से तरक़्क़ी नहीं कर सकता था।"[23] अतः समाज में जहाँ एक ओर रूढ़ियों, पाखण्ड और अशिक्षा का बोलबाला था वहीं दूसरी ओर इसके विरुद्ध समाज को जाग्रत करने के प्रयास भी विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से किये जा रहे थे। हिन्दू समाज को रूढ़ियों, अंधविश्वास से अलग करने के लिए 'ब्रह्मसमाज', 'आर्यसमाज' प्रयासरत थे, वहीं मुस्लिम समाज को अशिक्षा, रूढ़ियों से अलग करने में सर सैय्यद अहमद खाँ, अल्ताफ हुसैन हाली, शिबली नोमानी और मौलाना आज़ाद का विशेष योगदान रहा।

श्रीमती शीला गुप्त के अनुसार–"समाज में एक ओर घुँघरू की झंकार थी, रागिनियों की कोमल तानें थी, दूसरी ओर करुण क्रन्दन था, विलाप था, हाहाकार था और थी भूखे–तड़पते हृदयों की मूकवेदना जिसे कोई सुनने वाला न था। इस विभिन्न प्रकार के सामाजिक अन्यायों और धार्मिक संकीर्णताओं से जर्जरित हिन्दू समाज एक लम्बे समय से सामाजिक, धार्मिक सुधार की आवश्यकता अनुभव कर रहा था"।[24] अतः इन सभी परिस्थितियों से भारतीय समाज दो चार हो रहा था और हर क्षेत्र में सुधार चाहता था जिसका चित्रण प्रेमचन्द ने अपने सभी उपन्यासों में किया है।

समाज में नारी की स्थिति

प्रेमचन्द युगीन समाज में भारतीय नारी दोहरी गुलामी का शिकार थी। यद्यपि विभिन्न धर्मों, आर्थिक स्तरों, जातियों और क्षेत्रों में भारतीय समाज में नारी की स्थिति में अन्तर था। सत्यकाम के अनुसार–"अंग्रेज़ों की गुलामी तो सारा भारत झेल रहा था, जिसमें स्त्री पुरुष दोनों थे स्त्रियाँ भारतीय समाज के भीतर भी दूसरी गुलामी की शिकार थीं। यद्यपि विभिन्न धर्मों, आर्थिक स्तरों जातियों और क्षेत्रों में, भारतीय समाज में नारी की स्थिति में अन्तर था पर समग्र रूप में समाज में उसका स्थान अधिकार विहीन, पुरुषाश्रित, शोषित सदस्य के रूप में ही था"।[25] इस प्रकार भारतीय समाज में प्राचीन काल से अनेक कुरीतियाँ व अनेक कुप्रथाएँ चली आ रहीं थीं ऐसी ही एक समस्या थी सती–प्रथा। राजा राम मोहनराय प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे। उन्होंने इस प्रथा को खत्म करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इसके लिए उन्हें धार्मिक कट्टरपंथ का ज़ोरदार विरोध करना पड़ा। कहीं–कहीं शास्त्रों का प्रमाण लेकर इसका विरोध किया। उन्होंने हार नहीं मानी और इसको 4

दिसम्बर 1829 को अवैध घोषित कराया। राजा राममोहन राय के इन प्रयासों से समाज में स्त्रियों की दशा में महत्त्वपूर्ण सुधार आया।

रामदीन गुप्त अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द और गांधीवाद' में लिखते हैं कि – "भारतीय स्त्री के उद्धार के लिए जितना काम अकेले राजा राम मोहनराय ने किया, उतना संभवतः आधुनिक युग में किसी भी अन्य समाज सुधारक ने नहीं किया होगा। वे विधवा विवाह और स्त्री के समान अधिकारों के प्रबल समर्थक थे। इसके अलावा वे बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, पशुबलि आदि के भी कट्टर विरोधी थे।"[26] अतः राजाराम मोहन राय ने सामाजिक बुराईयों को दूर करने का सफ़ल प्रयास किया और प्रेमचन्द के युग में आते–आते इस स्थिति में काफी परिवर्तन आया। शिक्षा व अनेक आन्दोलनों के प्रचार से इस प्रकार की घटनाओं में काफ़ी कमी आयी।

विधवा–विवाह

प्रेमचन्द युग में एक महत्त्वपूर्ण समस्या विधवा विवाह की भी थी। हिन्दू समाज में विधवा स्त्री एक ज़िन्दा लाश के समान थी। उसकी समाज में न कोई इज़्ज़त थी न ही मान–सम्मान। समाज के लोग उसको राक्षसी समझते थे। समाज में विधवा स्त्रियों को पुनः विवाह की अनुमति नहीं थी वहीं दूसरी ओर पुरुष चाहे तो एक से अधिक स्त्रियों से विवाह कर सकता था। सत्यकाम के अनुसार–"जहाँ एक ओर स्त्रियों के लिए विधवा विवाह निषिद्ध था वहाँ पुरुष एक से अधिक विवाह करने को स्वतंत्र था। इस कारण सपत्नियों की समस्या पैदा होती थी। पति की आँख से उतरी पत्नी की परिवार में घोर उपेक्षा होती थी। वह एक प्रकार से गुलामी का जीवन व्यतीत करती थी। परिवार में बाहर निकलने के सारे रास्ते बन्द थे। केवल दो रास्ते खुले थे, एक वेश्या के कोठे की ओर जाने वाला और दूसरा कुँए

या नदी की ओर पहुँचने वाला। फलतः पति द्वारा उपेक्षित पत्नी को अमानुषिक परिवारिक अत्याचार के बीच ज़िन्दगी बसर करनी पड़ती थी।"[27] अतः प्रेमचन्द युग में नारी जीवन अत्यन्त कठिन रास्तों से होकर गुज़र रहा था। न उन्हें समाज में सम्मान मिलता और उनके आगे आने वाले जीवन में चारों ओर केवल अन्धकार ही अन्धकार था।

विवाह अधिकार

प्रेमचन्द युग में विवाह के अधिकार की समस्या भी एक प्रमुख समस्या थी। स्त्री को विवाह के लिए स्वयं जीवन साथी चुनने का अधिकार नहीं था। उसे माता–पिता की इच्छा के आगे अपनी इच्छा को मारना पड़ता था। अनेक महापुरुषों का ध्यान इस रूढ़िवादी सामाजिक दास्तां की ओर गया और उन्होंने विवाह में युवक–युवतियों की इच्छा को मिलाना उचित समझा और पुराने रूढ़िवादी बन्धनों का विरोध किया। इधर पश्चिमी संस्कृति और शिक्षा के विकास से प्राचीन रूढ़िवादी विवाह पद्धति को धक्का लगा और यूरोपीय विवाह पद्धति को बल मिला। लोगों ने प्रेम को विवाह का आधार बनाया लेकिन इससे समाज में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। ऐसी स्थिति में राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने बीच का मार्ग अपनाने पर बल दिया जिसमें दोनों का सामंजस्य बन सके और वह सुख–शान्ति से जीवन का निर्वाह कर सके।

दहेज–समस्या

भारतीय समाज की जटिल समस्याओं में से एक थी दहेज की समस्या। जिसने समाज को तथा नारी जीवन को दूषित और विषादमय बनाया। प्राचीन काल से ही यह समस्या हमारे देश में व्याप्त है। पुत्री का पिता की सम्पत्ति पर तो

अधिकार था नहीं परन्तु पिता विवाह के उपरान्त अपनी कन्या को ममता के कारण कुछ–न–कुछ दे दिया करता था। लेकिन शिक्षा के प्रचार प्रसार उसके आधुनिकीकरण के बाद यह समस्या और भयंकर होती जा रही थी। जितना पढ़ा लिखा व्यक्ति होता उतनी ही दहेज की माँग अधिक होती थी।

सत्यकाम लिखते हैं कि–"दहेज की रकम न जुटा पाने के कारण अनेक पिता अपनी लड़कियों का विवाह बूढ़ों, रोगियों, निठल्लों, बेकार युवकों, पूर्व विवाहित, प्रौढ़ आदि से करा दिया करते थे। बंगाल और बिहार के मिथिला अंचल में तो रसोई बनाने वाले कुलीन ब्राह्मण के गले दर्जनों बालिकाएँ पत्नियों के रूप में मढ़ दी जाती थीं।"[28] इस प्रकार दहेज की समस्या एक स्त्री के जीवन को किस प्रकार तहस–नहस कर देती है, प्रेमचन्द कृत 'निर्मला' उपन्यास इसी दहेज समस्या की करुण गाथा है।

वेश्यावृत्ति

ग़रीबी के कारण या लालचवश जो समाज में अनमेल–विवाह हुए उसका सामाजिक व्यवस्था पर अच्छा असर नहीं पड़ा। नारी अपनी आर्थिक दासता और अशिक्षा के कारण इसका विरोध करने में असमर्थ थी। उसकी इस असमर्थता ने उसका जीवन विकसित होने से पहले ही मुरझा दिया इन सब कारणों ने समाज में वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दिया। प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में सुमन के माध्यम से इस समस्या को उजागर किया है जिसमें सुमन का जीवन आर्थिक दासता के कारण उसे वेश्यावृत्ति की ओर ले जाता है।

पर्दा–प्रथा

प्रेमचन्द युगीन समाज में पर्दे की प्रथा ज़ोरों पर थी। मुस्लिम शासन में इस प्रथा को बल मिला। प्रेमचन्द युग में पर्दे का बहुत प्रयोग होता था। कुछ समय के पश्चात् परिस्थितियाँ बदलना शुरू हुईं तद्युगीन नारियों में शिक्षा के साथ–साथ राष्ट्रीय भावना भी जाग्रत होने लगी वह आन्दोलनों में बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रहीं थीं पर्दा इसमें बहुत बड़ी बाधा थी। इसी कारण पर्दा प्रथा को अधिक बल नहीं मिल पाया और धीरे–धीरे इसका चलन कम होता गया।

आर्थिक समस्या

संयुक्त परिवार में पति के मरने के बाद नारी आर्थिक संकटों का सामना अधिक करती थीं क्योंकि पति की सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं था। बल्कि पति के कोई दूर के सम्बन्धी का उस पर अधिकार हो जाता था। इससे पत्नी को अनेकों संकटों का सामना करना पड़ता था। इन सब रूढ़ियों को शिक्षा के अभाव के कारण उसको झेलना पड़ता था। नारियों की स्थिति उच्च तथा निम्नवर्ग में कुछ बेहतर थी क्योंकि उच्चवर्ग साधन सम्पन्न होता था और निम्नवर्ग मर्यादाओं का उतना अधिक पालन न करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लेने के लिए जीवकोपार्जन आसानी से किया करता था। इसके विपरीत मध्यवर्ग के लोग अधिक रूढ़िवादी परम्परावादी थे वह अपनी मर्यादाओं को बनाये रखने के लिए नारियों को अधिक बन्धन में रखते थे। प्रेमचन्द कृत 'सेवासदन', 'निर्मला' आदि उपन्यासों में इस स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है।

नारी की इस दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए हिन्दू समाज में 'आर्यसमाज' व ब्रह्मसमाज' ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'ब्रह्मसमाज' ने बाल–विवाह,

बहुविवाह का विरोध किया तथा विधवा–विवाह का समर्थन किया। 'ब्रह्मसमाज' ने नारी के अधिकारों पर बल दिया तथा समाज में नारी की शिक्षा के लिए प्रयास किये। इसके अतिरिक्त 'प्रार्थना समाज' ने हिन्दू धर्म के अन्दर व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के भरसक प्रयास किये। इन आन्दोलनों ने देश की सामाजिक स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन किया। 'आर्यसमाज' ने शिक्षा, नारी जागरण, दलितोद्धार, अस्पृश्यता, जाति, वर्ण–व्यवस्था का खण्डन कर रचनात्मक कार्य किया। 'आर्यसमाज' ने नारियों की स्थिति को सुधारने के लिए विधवा–विवाह को लोकप्रिय बनाने के लिए सराहनीय कार्य किया तथा अनमेल–विवाह का विरोध किया। समाज में स्त्री–पुरुष की बराबर की हिस्सेदारी का समर्थन 'आर्यसमाज' ने किया। वेश्यावृत्ति की स्थिति को सुधारने के लिए भी 'आर्यसमाज' ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

डॉ0 शीला गुप्ता के अनुसार–"धार्मिक आन्दोलनों ने मनुष्य की सोयी हुई आत्मा को जगाने का सफ़ल प्रयास किया। मनुष्य के मन से हीन–भावना को दूर करने का वर्षों की दासता से मुक्ति पाने के लिए जितनी भी बाधाऐं थीं उन्हें तोड़ने का प्रयत्न किया।"[29] इस प्रकार प्रेमचन्द युगीन सामाजिक बुराईयों को दूर करने में धार्मिक आन्दोलनों का प्रयास सफ़ल रहा। वह सदैव से वर्षों की दासता से छुटकारा पाने का प्रयास करते रहे।

मुस्लिम समाज में नारी की स्थिति

देश में व्याप्त इन सामाजिक कुरीतियों को सुधारने का कार्य जहाँ एक ओर यह आन्दोलन कर रहे थे वहीं मुस्लिम समाज में नारियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। मुस्लिम समाज सुधारकों ने इस स्थिति को समझा और सर्वप्रथम शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर बल दिया। इस समय सर सैयद अहमद खाँ ने इस दिशा में बहुत

महत्त्वपूर्ण कार्य किया। क्योंकि वह जानते थे कि मुस्लिम समाज के पिछड़ेपन का कारण अशिक्षा है। सर सैय्यद अहमद खाँ ने मोहम्मडन एंग्लो ओरियन्टल कालेज की स्थापना की जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी बना। जिससे मुस्लिम समाज में शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी परिवर्तन आया। प्रेमचन्द भी अलीगढ़ आये तो उन्होंने यहाँ की स्थिति को 16 अप्रैल 1934 को जैनेन्द्र जी को पत्र लिखकर इस प्रकार स्पष्ट किया–"मुझे आश्चर्य हुआ कि वहाँ कितनी ही मुस्लिम लड़कियाँ पर्दा नहीं करतीं और वह सब मेरी नयी से नयी उर्दू प्रकाशित किताब 'ग़बन' पढ़ चुकी थीं।"[30] अतः मुस्लिम समाज में नारी की स्थिति सुधारने के लिए शिक्षा पर बहुत अधिक ज़ोर दिया गया। प्रेमचन्द का उपर्युक्त कथन मुस्लिम समाज में आयी जागरुकता और परिवर्तन को रेखांकित करता है।

प्रेमचन्द 'आर्यसमाज' तथा महात्मा गांधी की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित थे। इनके युग में 'आर्यसमाज' ने हिन्दी भाषी क्षेत्र में अपना प्रभाव जमा लिया था। अतः प्रेमचन्द के साहित्य पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। प्रेमचन्द 'आर्यसमाज' के मेम्बर थे। इसकी पुष्टि जून 1915 को मुन्शी दयानारायण निगम को लिखे पत्र से होती है–"10 को लखनऊ और लाहौर में आर्यसमाज की जुबली के साथ एक आर्यभाषा सम्मेलन हो रहा है। वहाँ 11 को मुझे सम्मेलन का सदर बनना है।"[31] प्रेमचन्द के उपन्यासों में 'आर्यसमाज' के आन्दोलनों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने समाज में व्याप्त नारियों की दयनीय स्थिति को अपने उपन्यासों में पूरा स्थान दिया है प्रेमचन्द पर उस समय की सामाजिक स्थिति की अमिट छाप भी थी इसीलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में उस समय की प्रत्येक स्थिति तथा वातावरण का चित्रण किया तथा सच्चे साहित्यकार की भाँति एक आदर्श

प्रस्तुत करने की कोशिश की। उन्होंने 24 दिसम्बर 1935 को जैनेन्द्र को लिखे पत्र में कहा–"गृहणी से अलग भी उसका जीवन है। अगर उसमें गृहिणीत्व से आगे बढ़ने की सामर्थ्य है तो वह क्यों न आगे बढ़े।"[32] उनकी पत्नी स्वयं लेखिका तथा कर्मठ महिला थीं और जेल भी जा चुकी थीं। प्रेमचन्द ने 12 जून 1931 को जैनेन्द्र को लिखे पत्र में इस बात का ज़िक्र किया है– "हाँ, पत्नी जी आ गईं मगर शायद फिर जाएँ अभी उन्हें सन्तोष नहीं सारा स्वराज्य एकबार ही ले लेंगी। किस्तों में नहीं चाहतीं।"[33] उपर्युक्त कथन यह स्पष्ट करता है कि प्रेमचन्द के साथ उनकी पत्नी में भी साहित्य भावना व देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रति अद्‌भुत लगन थी।

अछूत समस्या

प्रेमचन्द युगीन समाज में अछूतों की समस्या अत्यन्त जटिल थी। अछूतों को मनुष्य की श्रेणी में नहीं रखा जाता था। उच्चवर्ग के लोग उनके स्पर्श से ही अपवित्र हो जाते थे। मन्दिर प्रवेश तथा कुँए से पानी लेने का अधिकार उन्हें नहीं था। विश्वव्यवस्था के बदलते स्वरूप, शिक्षा के प्रसार ने इस भयानक व्यवस्था तथा विचारों में परिवर्तन ला दिया। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने समाज में आ रहे बदलाव के बारे में लिखा है–"समाज में जो परिवर्तन आ रहे हैं जो तब्दीलियाँ हमारी आँखों के सामने हो रही हैं उनका कारण खासतौर पर यह है कि बुनियादी आर्थिक परिवर्तनों ने हिन्दुस्तानी समाज के सारे ढाँचे को हिला दिया है और सम्भव है कि उसे पूरी तरह उलट पलट दें। ज़िन्दगी के हालातों में तब्दीली आ गई है विचार के ढंग बदल रहे हैं।"[34] अतः प्रेमचन्द युग में सामाजिक परिवर्तन तेज़ी से हो रहा था। उस समय कांग्रेस जो किसी जाति विशेष से सम्बन्धित नहीं थी उसने भी ऐसी व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया। कांग्रेस की सदस्यता पाने के लिए

छुआछूत में अनास्था को अनिवार्य बना दिया गया। क्योंकि इसके बिना देश की एकता अखण्डता को ख़तरा हो सकता था।

महात्मा गांधी और डॉ0 अम्बेडकर ने अछूतों की समस्याओं को सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। महात्मा गांधी जो आज़ादी की लड़ाई में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे, जानते थे कि समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग जिसे पिछड़ा, अछूत कहकर अलग कर दिया गया है, अनुचित है, उन्हें समाज में पूरा अधिकार मिलना चाहिए। इसके साथ ही इससे भारत की शक्ति भी क्षीण हो रही है। अतः उन्होंने दलितों के उत्थान के लिए भरसक प्रयास किये और भारत की बिखरी पड़ी शक्ति को मिलाने का कार्य किया।

गांधी जी ने अस्पृश्यता निवारण को स्वराज्य प्राप्ति के लिए अनिवार्य माना। हरिजनोत्थान के लिए 'ब्रह्मसमाज', 'आर्यसमाज' ने महत्त्वपूर्ण कार्य तो किये परन्तु गांधी जी का योगदान भी कम नहीं रहा। गाँधी जी के सफ़ल प्रयास को देखकर इन दबे कुचले, वर्षों से प्रताड़ित लोगों को हर्ष का अनुभव हुआ और उनके अन्दर जागृति का अहसास हुआ। गांधी जी का विचार था कि हिन्दुत्व पर छुआछूत का कलंक लगा रहना बुरा है। गांधी जी के विचारों से लेखक, बुद्धिजीवी, साधारण जनता अत्यधिक प्रभावित हुई तथा समाज में जागरुकता उत्पन्न हुई। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से विशेषकर 'कर्मभूमि' के माध्यम से अछूतों की समस्या को उजागर किया तथा स्वयं अछूतों के भीतर जाग्रति उत्पन्न करने की चेष्टा की।

किसानों की स्थिति

प्रेमचन्द युगीन समाज में किसानों की स्थिति बहुत दयनीय थी। भारत कृषि प्रधान देश है। इसे गाँवों का देश कहा जाता है। देश की अधिक से अधिक

जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। अतः उसका पूरा विकास किसानों पर निर्भर करता है। परन्तु उनकी स्थिति समाज में सबसे खराब व दयनीय थीं यह समय किसान और ज़मींदारों के संघर्ष का समय था। ज़मींदारों के साथ–साथ जनता को पुलिस, बड़े अफ़सरों, वकीलों, न्यायधीशों के अत्याचारों को भोगना पड़ता था। प्रेमचन्द किसानों के बहुत समीप थे उन्होंने ग्रामीण जीवन की संस्कृति उनके दुखों को अपने साहित्य में पूरा स्थान दिया है। श्रीमती शीला गुप्त लिखती हैं–"कलम के धनी, बुद्धि के विलक्षण, सहृदय कथाकार प्रेमचन्द ने भारतीय ग्राम्य जीवन का वास्तविक चित्र खींचकर उसमें अपनी आँखों के आँसू और हृदय के रक्त से रंग भर दिया। प्रेमचन्द उसी को सत्य और शिव मानते थे जिसमें उस पीड़ित शोषित जनता का लाभ निहित हो। प्रेमचन्द ने अपनी प्रत्येक रचना को इसी कसौटी पर सत्य और खरा प्रमाणित किया।"[35] प्रेमचन्द के हृदय में किसानों के प्रति एक विशेष अनुराग था वह सदैव उनके जीवन के सुधार व हित की बात करते थे। वह ग्रामीण जीवन के अत्यन्त निकट थे शायद यही वजह है कि उनका साहित्य ग्रामीण जीवन की करूण गाथा हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

अंग्रेज़ों ने ज़मींदारों को अधिक अधिकार देकर किसानों के ख़िलाफ़ प्रयोग किया जिससे किसानों का शोषण आसान हो गया। किसानों की दशा दिन–प्रतिदिन बिगड़ती गयी। श्रीमती शीला गुप्त के अनुसार–"अंग्रेज़ी सरकार ने ज़मींदारों के एक अतिशय शोषक वर्ग को जन्म देकर किसानों के चिरंतन शोषण का द्वार खोल दिया फलतः किसानों का जीवन नारकीय हो गया था। भूमि की उपज से ही उनका भरण–पोषण नहीं हो पा रहा था। उन पर कर्ज़ का भार बढ़ता जा रहा था। उनका सामाजिक जीवन विश्रंखलित हो गया था। अशिक्षा, अन्धविश्वास, भाग्यवादिता आदि

ने कृषक समाज के जीवन में निराशा और अवसाद भर दिया था।"[36] इस प्रकार किसान सदैव त्रासदी का जीवन जीता रहा। वह निराशा, कुण्ठा तथा अवसाद में डूबा रहा। ज़मींदारों और उनके कारिन्दों ने किसानों पर जुल्म किया। लगान समय पर न देने या कम देने पर यह लोग किसान को बुरी तरह प्रताड़ित करते थे। यह समय भारतीय किसान की त्रासदी का था परन्तु किसानों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हो रही थी। सन् 1917 की क्रान्ति से जनमानस में विश्वास पैदा हो गया कि यहाँ भी मज़दूरों और किसानों का राज्य होगा। अंग्रेज़ों के अत्याचारों या उनके सहयोगियों द्वारा हो रहे अत्याचार से मुक्ति मिलेगी।

कृष्णचन्द्र पाण्डेय के अनुसार–"अंग्रेज़ी सरकार के दलाल ज़मीदारों और ताल्लुकदारों ने अपने क्षेत्र के किसानों के साथ कड़ाई करनी प्रारम्भ कर दी। परिणामतः दोनों वर्गों के बीच गाँठ पड़ने लगी और धीरे–धीरे ज़मींदार किसान समस्या राजनीतिक समस्या का अंग बन गयी।"[37] अतः प्रेमचन्द के साहित्य में इन सारी परिस्थितियों व ज़मींदारी व्यवस्था तथा शासन इत्यादि के विरूद्ध तीव्र आक्रोश और किसानों की दयनीय स्थिति का हृदय को छू जाने वाला चित्र मिलता है।

प्रेमचन्द युग में पूरे विश्व में व्यापक परिवर्तन हो रहे थे अन्याय के विरूद्ध लोगों में जागरुकता आ रही थी। रूढ़ियों, घिसी–पिटी मान्यताओं और कुप्रथाओं के विरूद्ध जनता जाग्रत हो रही थी। भारतीय समाज में भी परिवर्तन आना अनिवार्य था। भारत में इस समय जो परिवर्तन हो रहे थे उसके मूल में बुद्धिजीवियों के उस वर्ग के प्रयत्नों की प्रेरणा थी जो प्रगतिशील विचारधारा और पाश्चात्य शिक्षा के मनीषी थे। इन्हीं से प्रभावित होकर बुद्धिजीवियों ने समाज को सुदृढ़ किया। इस समाज

को सुदृढ़ बनाने के लिए सामाजिक असमानता, जातियों, रूढ़िवादिता, परम्परावादिता का त्याग आवश्यक था। जिसके बिना समाज का विकास असम्भव है।

जवाहरलाल नेहरू के अनुसार–"टेक्निकल तब्दीलियों और उनके ज़ोरदार नतीजों की शक्ल में पश्चिम की असली टक्कर हिन्दुस्तान से उन्नीसवीं सदी में हुई। विचारों के मैदान में भी धक्का लगा और रद्दो बदल हुई और वह क्षितिज जो बहुत अर्से से एक संकरे खौल में घिरा हुआ था विस्तृत हुआ।"[38] अतः 19वीं सदी में हिन्दुस्तान की पश्चिम के साथ टक्कर में असली बदलाव आया।

प्रेमचन्द ने युवा वर्ग को अपनी शक्ति का एहसास दिलाया वह जानते थे कि बिना युवकों के कोई भी आन्दोलन सफ़ल नहीं होगा। "प्रेमचन्द ने समझ लिया था कि गाँव में स्वराज्य आन्दोलन की सफ़लता कांग्रेस की नीतियों से तब तक असफ़ल रहेगी जब तक नौजवान पीढ़ी ज़मीदार वर्ग का विरोध करने के लिए भरपूर ताकत से सामने नहीं आ जाती। नई पीढ़ी में जोश भरने के लिए अपनी सम्पादकीय टिप्पणी 'अगर तुम क्षत्रिय हो' में उन्होंने क्षत्रियत्वदीप्त नवयुवकों को अपनी मर्यादा का ध्यान दिलवाया"।[39] अतः प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से युवा वर्ग को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलनों की सफ़लता नौजवान पीढ़ी की ताकत पर भी निर्भर थी।

प्रेमचन्द ने व्यक्ति के विकास पर बल दिया और सबको बराबर सम्मान देने की बात कही। प्रेमचन्द ने 26 दिसम्बर 1934 को इन्द्रनाथ मदान को एक पत्र में लिखा है–"मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ हमारा उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना है। मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबको बराबर समान अवसर

मिले। विकास को छोड़कर और हम किस ज़रिए से इस मंजिल पर पहुँच सकते हैं? कोई समाज व्यवस्था नहीं पनप सकती जब तक हम व्यक्तिशः उन्नत न हों।"[40]

इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपनी विचारधारा द्वारा सदियों से सो रही भारतीय जनता के जागरण का भगीरथी प्रयास अपने साहित्य और लेख के माध्यम से किया तथा नारी जाति व दलितों को समाज में उचित सम्मान तथा आदरपूर्ण स्थान दिलाने का कार्य किया। इस प्रकार उपर्युक्त सन्दर्भों व तथ्यों द्वारा स्पष्ट है कि प्रेमचन्द युगीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति अनेक हलचलों से युक्त थी। गांधी जी के नेतृत्त्व में स्वाधीनता के लिए अनेक आन्दोलन चलाए जा रहे थे और समाज भी अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था। नारी की विभिन्न समस्याओं के प्रति अछूतों और किसानों की समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास किया जा रहा था। इस प्रकार प्रेमचन्द अपनी लेखनी द्वारा तद्युगीन समस्याओं को गहराई से रेखांकित कर रहे थे जो आज उनके साहित्य के रूप में हमारे पास मौजूद हैं।

स्वतंत्रता पूर्व राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप

"हरेक कौम का इल्मो अदब अपने ज़माने की सच्ची तस्वीर होता है। अब हिन्दुस्तान के कौमी ख्याल ने बलोग़ियत (बालिगपन बुद्धिमत्ता) के ज़ीने पर एक कदम बढ़ाया है और हुब्बे वतन के जज़्बात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं, क्यूँकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता? जूँ–जूँ हमारे ख्याल वसीह (विस्तृत) होते जायेंगे, इसी रंग का लिटरेचर रोज़ अफ़्ज़ों (प्रतिदिन बढ़ना) फरोग़ होता जायेगा।"[41] (नौबतराय प्रेमचन्द का शुरूआती लेखकीय नाम)

इस प्रकार साहित्य और समाज का सम्बन्ध अपने समय की एक सच्ची तस्वीर से होता है। उस समाज की हर परिस्थितियाँ उस समय के साहित्य में दृष्टिगत होती हैं अतः जिस तरह दिन–प्रतिदिन समाज की परिस्थितियाँ बदलेंगी उसका प्रभाव उस समय के साहित्य के साथ आगे बढ़ता जायेगा। इस प्रकार प्रेमचन्द का साहित्य हमें सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहा।

मदन गोपाल के अनुसार–"Nineteen Hundred and thirty was a year of ordinances in India! some nine of them were issued within a short period of six months! These ordinances imposed drastic curbs on the life of the community, in particular, on the functioning of the press. Suspension of the publication of newspaper, however, gave a fillip to the movement of national liberation. Rumours spread like wild fire. People got agitated and existed. More and more of them came forward to offer Satyagraha."[42] In short we can say that Nineteen hundred and thirty was a vey critical period in Indian ordinances, and every man got agitated more and more of them came forward to Satyagraha. And this movement was movement of Natioanl liberation.

[सन् 1900–30 का समय भारतीय जनता के लिए एक चुनौती का समय था। लोग दिन–प्रतिदिन सत्याग्रह से जुड़ते जा रहे थे और सत्याग्रह आन्दोलन ने राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ले लिया जिससे जुड़कर हर देशवासी का एक ही लक्ष्य था और वह था देश की आज़ादी।] अतः भारतीय जनता ने इस चुनौती के समय

का दृढ़तापूर्वक सामना किया तथा उस समय हर देशवासी केवल एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ रहा था और वह था देश को आज़ाद कराने का लक्ष्य।

नरेन्द्र कोहली लिखते हैं–"वास्तविक जनक्रान्ति की प्रक्रिया प्रेमचन्द के आने के पश्चात् आरम्भ हुई। प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सही किस्म का मानवीय दृष्टिकोण था। वे आरम्भ से ही अपने देश की भीतरी और बाहरी बुराईयों को रेखांकित कर रहे थे, कहीं उन पर प्रहार कर रहे थे कही समझा रहे थे तो कहीं सुधार का उपदेश दे रहे थे।"[43]

अतः प्रेमचन्द का मानवीय दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही अपने देश की भीतरी और बाहरी हर परिस्थितियों के साथ रहा। उन परिस्थितियों को उन्होंने कभी समझा, कभी सुधार का रास्ता दिखाया तो कहीं उन पर तीखा व्यंग्य किया है। प्रेमचन्द इन परिस्थितियों से भली–भाँति गुज़रे थे और देश को आज़ाद कराने का सपना देख रहे थे।

नरेन्द्र कोहली लिखते हैं–"प्रेमचन्द का काल स्वतंत्रता संग्राम का काल था। कोई भी लेखक राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, जनतन्त्र अथवा समाजवाद का नारा लगाकर स्वयं को महत्त्वपूर्ण लेखक सिद्ध कर सकता था। स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता का बना बनाया नुस्ख़ा सर्वसुलभ और सरल था। प्रत्येक व्यक्ति बिना कोई शंका लिए बिना कोई तर्क दिए सुविधा से यह स्वीकार कर लेता था कि इस देश की प्रत्येक बीमारी का एकमात्र कारण इसकी परतन्त्रता है। जिस दिन अंग्रेज़ यहाँ से चले जाऐंगे और देश स्वतन्त्र हो जाएगा उसी दिन एक चमत्कार होगा सब कुछ परिवर्तित हो जाएगा।"[44] प्रेमचन्द का समय स्वतंत्रता संग्राम का समय था और उस समय का हर लेखक जनतन्त्र और समाजवाद की बात कर रहा था और प्रत्येक व्यक्ति के मन में

यह बात घर कर गयी थी कि परतन्त्रता ही इस देश की सबसे बड़ी समस्या है जिससे देश को आज़ाद कराना है और यही देशवासियों का एकमात्र लक्ष्य था।

नरेन्द्र कोहली का विचार है–"प्रेमचन्द शायद आरम्भ में ही समझ रहे थे कि केवल स्वतंत्रता से ही सब बीमारियाँ दूर नहीं होंगी। स्वतंत्रता अपने आप में कोई जन–क्रान्ति करने में पूर्णता को प्राप्त करते–करते अवश्य स्वतन्त्रता में परिणित होगी इसीलिए उनके साहित्य में स्वतंत्रता के नारे कम, जन–सामान्य को जागरुक बनाने, उसे उच्च और सुन्दर जीवन के लिए प्रशिक्षित करने, उसे अपने हीन जीवन से निकलने के लिए एक व्यापक संघर्ष के प्रति प्रेरित करने का प्रयास ही अधिक है।"[45] अतः प्रेमचन्द यह मानते थे कि केवल आज़ादी ही समाज की समस्या का पूर्ण समाधान नहीं है, बल्कि देश की आज़ादी के साथ–साथ जन सामान्य को हर परिस्थितियों के लिए जागरुक होना व आगे बढ़ाना होगा जिसे एक सुन्दर जीवन यापन के लिए प्रशिक्षित होने के साथ–साथ अपने दयनीय तथा हीन जीवन से बाहर निकलने के लिए प्रयास करने होंगे तभी सच्चे अर्थों में हमारा देश आज़ाद होगा। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के द्वारा इन्हीं बातों का उपदेश दिया तथा जनता को आगे बढ़ने के लिए जाग्रत करने का सदैव प्रयास किया है।

नरेन्द्र कोहली इस विषय पर लिखते हैं–"प्रेमचन्द का समय इस देश के इतिहास में वह समय था जब इस देश में बड़ी–बड़ी घटनाएँ घट रही थीं। लोग स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे और त्याग, बलिदान एवं आदर्शों की भावनाएँ पर्याप्त बलवान थी।"[46] प्रेमचन्द का समय देश के इतिहास मे संघर्ष का समय रहा है तथा उस समय प्रत्येक व्यक्ति में त्याग, बलिदान, संघर्ष और आदर्शों की भावनाएँ

अपनी उच्च सीमा पर थी। प्रत्येक व्यक्ति देश की आज़ादी के लिए मर मिटने को तैयार था।

मुरली मनोहर प्रसाद के अनुसार–"मुंशी प्रेमचन्द के दौर में स्वाधीनता आन्दोलन तीन चरणों से होकर गुज़रा। पहला चरण था, बंगाल के विभाजन के बाद उभरने वाला आतंकवादी आन्दोलन; दूसरा चरण, स्वदेशी का आन्दोलन; और तीसरा था सत्याग्रह आन्दोलन। सामाजिक सुधार की मुहिम हो या ज़मींदारों और किसानों, मिल मालिकों और कामगारों के बीच का संघर्ष, सबने अपने–अपने दायरे में आज़ादी की चाह का ही प्रतिनिधित्व किया। मुंशी प्रेमचन्द ने इन आन्दोलनों के विभिन्न पहलुओं का बड़ा ही विश्वसनीय चित्रण किया है।"[47] इस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन जिन–जिन चरणों से होकर गुज़रा उन सभी का चित्रण मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य में बख़ूबी मिलता है। इसके अतिरिक्त सभी वर्गों के अन्तर्गत मिल मालिक, मज़दूर, किसान, ज़मीदार, आदि की स्थितियों का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यास में किया है। साथ ही स्वाधीनता आन्दोलन का हर पड़ाव उनके साहित्य से होकर गुज़रा है स्वाधीनता संग्राम का कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता नहीं रहा है।

इस विषय पर डॉ0 रामविलास शर्मा का मत है–"सन् सत्तावन की राज्यक्रान्ति भारतीय इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। जनता के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास पर उसका प्रभाव इसी प्रकार की अन्य घटनाओं से कम नहीं है।"[48] अतः जनता के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास पर सत्तावन की राज्यक्रान्ति घटना का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है और यह घटना केवल भारत की नहीं बल्कि पूरे विश्व के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है।

मन्मथनाथ गुप्त का विचार है–"भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उसमें जो लोग आये, वे एक बिन्दु पर टिके नहीं रहे। वे समय के साथ बराबर प्रगति करते रहे, विचारों में, तकनीक में।"[49] अतः राष्ट्रीय आन्दोलन की सबसे मुख्य बात यह थी कि जो लोग इसमें शामिल थे वे विचारों व तकनीक व अन्य क्षेत्रों में भी सदैव आगे थे। वह केवल देश की उन्नति के बारे में सोचते थे।

डॉ0 प्रुथी के मतानुसार–"19वीं सदी में भारतीय राष्ट्रीयता की कल्पना के दो आधार रहे हैं–पश्चिम प्रतिमान के अनुसार अथवा भारतीय सांस्कृतिक एकता के आधार पर।"[50] अतः भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में मुख्य बिन्दु भारतीय सांस्कृतिक एकता का आधार रहा है जिसे हम आज भी महसूस करते हैं।

डॉ0 मुरली मनोहर प्रसाद लिखते हैं–"जिस समय प्रेमचन्द ने ब्रिटिश झंडे को दुनिया के एक चौथाई हिस्से पर लहराते देखा उस समय तक हिन्दुस्तान पूरी तरह से साम्राज्यवाद के चंगुल में आ चुका था। सन् 1857 की पराजय के बाद इस मुल्क की सामन्ती ताकतें ब्रिटिश राज की गुलामी क़बूल कर चुकी थी और हिन्दुस्तान कच्चे माल के एक गोदाम इंग्लैंड के तैयार माल के एक सुरक्षित बाज़ार और ब्रिटिश व्यापारियों तथा उद्योगपतियों के लिए एक खुशनुमा शिकारगाह में तब्दील हो चुका था। लेकिन ठीक उसी समय, पश्चिमी शिक्षा के प्रसार के साथ राष्ट्रीय जागरण की तरंगे भी उठनी शुरू हो चुकी थीं और जागरुक तबकों की ओर से सामाजिक सुधार के प्रयास भी किए जाने लगे थे।"[51] अतः प्रेमचन्द ने देखा कि दुनिया के एक चौथाई हिस्से पर ब्रिटिश हुकूमत राज कर रही थी और पूरा देश साम्राज्यवाद के घेरे में फंस चुका है सन् 1857 की पराजय से देश की स्थिति बहुत

अधिक बिगड़ चुकी है इसके साथ ही उन्होंने दूसरी ओर समाज सुधार और राष्ट्रीय जागरण की उठती हुई तरंगे भी देखी जिसका चित्रण उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से किया है।

डॉ0 मुरली मनोहर का मत है –"बंगाल में सामाजिक सुधार और राजनीतिक अधिकारों के लिए आन्दोलन राजा राममोहन राय ने आरम्भ किया। उन्होंने लोगों की संकीर्णतावादी प्रवृत्तियों को चुनौती दी उन्हें नए ढंग से सोचने पर बाध्य किया तथा नए सिद्धान्तों और आदर्शों पर आधारित जीवन जीने का आह्वान किया। उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की।"[52] इस प्रकार राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना करके राष्ट्रीय आन्दोलन में एक बड़ा योगदान दिया जिसके द्वारा उन्होंने व्यक्ति की संकीर्णतावादी प्रवृत्ति को खत्म करने का प्रयास किया तथा नए आदर्शों और सिद्धान्तों की स्थापना करने का प्रयास किया।

डॉ0 मुरली मनोहर का मत है–"राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित सामाजिक सुधारों की परम्परा को केशवचन्द सेन, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और स्वामी विवेकानन्द ने आगे बढ़ाया। इन्हीं दिनों स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्यसमाज' के आन्दोलन की शुरूआत की और सन् 1886 में मादाम ब्लावत्स्की और एलकॉट का भारत का आगमन हुआ जिन्होंने 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की नींव रखी। इसी समय के आसपास भारतीय कांग्रेस भी वजूद में आई। उन दिनों कांग्रेस शहरों तक सिमटे हुए कुछ प्रमुख माडरेट्स की एक संस्था भर थी। यही वह वातावरण था, जिसके बीच मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी तालीम हासिल की।"[53] अतः 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना के बाद 'आर्यसमाज' की स्थापना, 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की नींव तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना इन सभी की राष्ट्रीय आन्दोलन में अहम भूमिका रही है

जिसका चित्रण प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में पूर्णरूप से किया है उसी युग में उन्होंने अपनी तालीम हासिल की और उस समय की परिस्थितियों को भली प्रकार से देखा और समझा।

डॉ0 मुरली मनोहर का विचार है–"मुंशी प्रेमचन्द ने अपना साहित्यिक कैरियर बमुश्किल शुरू ही किया था कि कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं, जिन्होंने उनके सोच और इनकी भावनाओं में एक क्रान्तिकारी बदलाव ला दिया। ये घटनाएँ थी रूस–जापान युद्ध (1904–05) और बंगाल का विभाजन।"[54] अतः प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन की जब शुरूआत हुई उसी समय रूस–जापान युद्ध तथा बंगाल का विभाजन हो गया जिससे उनकी व्यक्तित्त्व पर बहुत गहरा असर पड़ा।

डॉ0 मुरली मनोहर के अनुसार–"बंग–भंग की यह योजना लार्ड कर्ज़न के दिमाग की उपज थी। उसने सोचा कि राजनीतिक रूप से सर्वाधिक सचेत प्रान्त बंगाल का अगर बँटवारा कर दिया जाए तो राष्ट्रीय आन्दोलन को एक करारा झटका लगेगा और हिन्दू और मुसलमान विभाजित हो जायेंगे"[55] अतः राजनीतिक रूप से अत्यन्त सक्रिय प्रान्त बंगाल का विभाजन हो गया हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के मध्य धार्मिक मतभेद शुरू हो गए जिसके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन को एक बहुत बड़ा झटका लगा। फलस्वरूप प्रेमचन्द पर इन घटनाओं का बहुत खासा असर पड़ा। जिसने उनकी देशभक्ति की भावना की लपटों को और हवा दी।

डॉ0 मुरली मनोहर लिखते हैं–"मुंशी प्रेमचन्द ने मुल्क की आज़ादी को आम जनता के हवाले से ही देखा था, यानी उन लोगों के हवाले से जो गाँवों में ज़मीन जोतते थे या शहरों में दो जून की रोटी के लिए मज़दूरी करते थे।"[56] अतः प्रेमचन्द ने देश की आज़ादी को आम लोगों की नज़र से देखा, वो लोग जो दो वक़्त की

रोटी के लिए पूरे समय मेहनत–मज़दूरी करते थे और एक संघर्षमय जीवन से दो–चार हो रहे थे।

डॉ0 मुरली मनोहर के मतानुसार–"मुंशी प्रेमचन्द बहुत सहृदय और नरम मिजाज़ आदमी थे। एक जगह वे कहते हैं, "अगर सरकार पुलिस को सुधार दे तो स्वराज्य की माँग पचास साल के लिए मुल्तवी हो जाएगी।"[57] अतः प्रेमचन्द एक कोमल हृदय के व्यक्ति थे वे स्वराज्य की माँग को देखते हुए प्रत्येक व्यवस्था में सुधार व परिवर्तन चाहते थे।

डॉ0 मुरली मनोहर के अनुसार–"(मैदान–ए–अमल) (कर्मभूमि) बाज़ार–ए–हुस्न' (सेवासदन) में वे दिखलाते हैं कि शहर के कुछ सुधारक बातचीत में व्यस्त है। उनमें से एक थियोसोफिस्ट है और एक दूसरा इस विदेशी आन्दोलन का सख़्त विरोधी है। यह दूसरा कहता है, 'दास एक मायने में आज़ाद होता है। उसका शरीर बन्धन में भले ही हो, उसकी रूह आज़ाद होती है। तुम्हारी अंग्रेज़ी तालीम ने तुम्हें इस कदर मूढ़ बना दिया है कि अपने आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों के मामले में भी तुम पश्चिम विद्वानों के निर्णय की प्रतीक्षा करते हो।"[58] अतः प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन के हर पक्ष को अलग–अलग चरित्रों के माध्यम से अपने उपन्यासों में दिखाने का प्रयास किया और उनके द्वारा स्वराज्य की माँग को उनका उद्‌देश्य बनाया।

डॉ0 मुरली मनोहर लिखते हैं–"स्वदेशी आन्दोलन 1906 में शुरू हुआ पर इसने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद असहयोग और सत्याग्रह के दिनों में पूरी गति पकड़ी। मुंशी प्रेमचन्द ने स्वदेशी आन्दोलन का बेहद गर्मजोशी से स्वागत किया।"[59]

अतः प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन, असहयोग और सत्याग्रह के दिनों का खुशमिज़ाजी व हृदय से स्वागत किया उस समय यह आन्दोलन पूरा ज़ोर पकड़ चुका था। जिसका चित्रण उनके उपन्यासों में देखने को मिलता है।

डॉ0 मुरली मनोहर प्रसाद के अनुसार–"अगर अहिंसा आज़ादी का फलसफ़ा थी, तो सत्याग्रह इसका क्रियान्वित रूप था। लेकिन स्वदेशी आन्दोलन के सत्याग्रह में भी मुंशी प्रेमचन्द की कहानियाँ और उपन्यासों के नायक राजनीतिक नेता या बड़े लोग नहीं हैं, वे आम आदमी हैं। मिसाल के लिए, 'चौगाने हस्ती' (रंगभूमि) का सूरदास (एक अन्धा भिखारी) आखिर में कहता है, "हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, ज़रा दम ले लेने दो हार –हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे ओर एक न एक दिन हमारी जीत होगी, ज़रूर होगी।"[60]

अतः प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों के पात्रों द्वारा स्वदेशी आन्दोलन को आगे बढ़ाने व उसमें बढ़–चढ़कर भाग लेने की प्रेरणा दी और यह बताया कि देश को आज़ाद कराने का हौसला एक ग़रीब या निम्नवर्ग के व्यक्ति में जितना हो सकता है वह किसी बड़े नेता, व्यापारी या उच्चवर्ग के व्यक्ति में नहीं हो सकता।

डॉ0 कुँवरपाल सिंह के अनुसार–"अपने युग के अन्य साहित्यकारों की भाँति प्रेमचन्द भी देशभक्त और साम्राज्यवाद विरोधी थे विदेशी शासन से भारत की मुक्ति उनकी सबसे बड़ी महत्त्वकांक्षा थी।"[61] अतः प्रेमचन्द में देशभक्ति की भावना कूट–कूट कर भरी थी वह सदैव अंग्रेज़ी शासन से भारत की आज़ादी का सपना देख रहे थे तथा साथ ही साम्राज्यवाद के कट्टर विरोधी थे।

डॉ0 कुँवरपाल सिंह लिखते हैं–"प्रेमचन्द हमारी शताब्दी में सबसे बड़े सामाजिक यथार्थवाद कथाकार है ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया को वे भली–भाँति पहचानते और परखते रहे राष्ट्रीय आन्दोलन के जनवादी पक्ष के साथ वे सदैव भावनात्मक और चेतना के स्तर पर गहराई से जुड़े रहे।"[62] प्रेमचन्द जनवादी, सामाजिक व यथार्थवादी साहित्यकार थे वे ऐतिहासिक विकास की प्रगतिशील प्रक्रिया के साथ चले और राष्ट्रीय आन्दोलन के जनवादी पक्ष के साथ हमेशा जुड़े रहे।

डॉ0 कुँवरपाल सिंह का मत है–"बुर्जुवा वर्ग एवं सामन्तवर्ग के हाथों स्वराज्य की गंगा को हथियानें के षड्यन्त्र का प्रेमचन्द ने आरम्भ से ही विरोध किया इसके साथ ही मध्यम वर्ग की व्यक्तिगत स्वार्थों पर आधारित राजनीतिक का भी प्रेमचन्द बराबर विरोध करते रहे। राष्ट्रीय आन्दोलन में हर क्रान्तिकारी मोड़ को इस वर्ग ने समझौते की राजनीति में अत्यन्त कुशलता से बदल दिया, राष्ट्रीय बुर्जुवा वर्ग साम्राज्यवाद और राष्ट्रीयवाद और राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति जिस प्रकार दुरंगा नीति अपनाता रहा, किसान मज़दूर आन्दोलनों में भी यह वर्ग लगभग वैसी ही नीति अपनाता रहा।"[63] अतः प्रेमचन्द सामन्त व बुर्जुवा वर्ग के हाथों स्वराज्य हथियाने की साज़िश का हमेशा विरोध करते रहे राष्ट्रीय आन्दोलन के चलते उन्होंने मध्यम वर्ग की दुहरी नीति का भी विरोध किया तथा किसान व मज़दूर वर्ग के हित की बात सदा करते रहे।

इस विषय पर डॉ0 कान्तिमोहन का विचार है–"बीसवीं शती के आरम्भ में ही हम देखते हैं कि भारतीय जनता का राष्ट्रीय आन्दोलन एक ऐसा व्यापक रूप धारण करने लगता है कि जनता के विभिन्न तबकों किसानों, मध्यवर्गीय बृद्धजीवियों, छात्रों,

महिलाओं, अछूतों, मज़दूरों आदि के अलग–अलग आन्दोलन स्वतन्त्र रूप से विकसित होते हुए अनिवार्यतः उसमें आ मिलते हैं और इसे एक नई शक्ति प्रदान करते हैं।"[64] अतः 20वीं शताब्दी के आरम्भ से ही राष्ट्रीय आन्दोलन व्यापक रूप धारण कर चुका था इसके साथ जनता के विभिन्न वर्गों का अलग–अलग आन्दोलन स्वतंत्र रूप से जुड़ चुका था और इसे एक नयी शक्ति प्रदान कर रहा था। जो कि देश की स्वतंत्रता के लिए सबसे अधिक आवश्यक थी।

डॉ0 कान्तिमोहन के अनुसार–"भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन उपनिवेश वाद से सहयोग, आलोचना और प्रतिवेदन के साथ शुरू हुआ। लेकिन काल–क्रम से उसमें शक्ति आती गयी। ब्रिटिश पूँजीवाद द्वारा साम्राज्यवाद की स्थिति में संक्रमण कर जाने यानी 1898–1900 के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तेज़ी से आगे बढ़ा।"[65] अतः समय के साथ–साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में शक्ति आती गयी तथा यह आन्दोलन सहयोग, आलोचना और प्रतिवदेन के साथ चलते हुए और आगे बढ़ता गया।

कान्ती मोहन लिखते हैं–"1905 से 1910 तक राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली लहर ने देश को एक कोने से दूसरे कोने तक झकझोर दिया। इस लहर के पीछे दो मुख्य घटनाओं की प्रेरणा काम कर रही थी। पहली घटना अन्तर्राष्ट्रीय थी।1904–05 के युद्ध में एशिया के नन्हें से देश जापान ने यूरोप के देश रूस की साम्राज्यवादी ज़ारशाही के दाँत खट्टे कर दिए जिससे एशिया के तमाम देशों की जनता में विजय और विश्वास की एक लहर सी दौड़ गयी।"[66]

इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर से पूरा देश एक कोने से दूसरे कोने तक हिल गया तथा एशिया के तमाम देशों की जनता में विश्वास की लहर दौड़ने लगी जिसने उस आन्दोलन को एक नया रूप दिया।

कान्तिमोहन के मतानुसार–"1905 में पहली रूसी क्रान्ति हुई। दूसरी घटना राष्ट्रीय थी। उस ज़माने में भारतीय राजनीति के केन्द्र बंगाल को विभाजित करके राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर करने के लिए तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्ज़न ने इसका विभाजन कर दिया। 1906 तक कांग्रेस पर तिलक आदि के नेतृत्त्व में 'उग्रपंथी' तत्व काबिज़ हो चुके थे। बंगालियों ने जब विदेशी माल के बहिष्कार का नारा दिया तो कांग्रेसी नेतृत्त्व ने उसका समर्थन किया और स्वदेशी या देसी उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने पर बल दिया।"[67] अतः 1905–06 से लेकर 1910 तक राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर बहुत तेज़ रही साथ ही बंगाल विभाजन के साथ बंगालियों के अलावा, कांग्रेसियों ने भी इसका नेतृत्त्व किया तथा स्वदेशी उद्योग–धन्धों का प्रोत्साहन किया और विदेशी चीज़ों का बहिष्कार किया गया।

डॉ0 कान्तिमोहन का विचार है–"राष्ट्रीय आन्दोलन में संघर्ष की इस पहली लहर के दौरान प्रेमचन्द उर्दू में लिख रहे थे 'विविध प्रसंग–1' में 1905 से 1910 के दौरान लिखी गयी उनकी टिप्पणियाँ पढ़ने से साबित होता है कि वह इस आन्दोलन के समर्थक थे।"[68] अतः प्रेमचन्द राष्ट्रीय आन्दोलन के सदैव समर्थक रहे तथा इस आन्दोलन के समय वह उर्दू में लिख रहे थे।

डॉ0 कान्तीमोहन के अनुसार–"राष्ट्रीय आन्दोलन में 1920–22 तक सन्घर्ष की एक दूसरी लहर आयी जो पहली लहर से कहीं अधिक शक्तिशाली तथा व्यापक थी। चूँकि इस दूसरी लहर और 1930–34 तक तीसरी लहर का सम्बन्ध प्रेमचन्द

युग से है जिन्होंने अपने प्रमुख उपन्यास 1917 से 1936 तक लिखे।"[69] सन् 1920–22 की दूसरी लहर के बाद तीसरी राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर का सम्बन्ध प्रेमचन्द युग से है प्रेमचन्द ने अपने प्रमुख उपन्यास इसी युग में लिखे और अपने उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन के समय का हर चित्र उभारने का सफ़ल प्रयास किया।

उपर्युक्त संदर्भों व तथ्यों द्वारा यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति प्रेमचन्द सदैव सचेत रहे स्वतंत्रता की अवधारणा प्रेमचन्द के कथा–साहित्य की आत्मा है। किन्तु अत्यन्त दुःखदायी बात यह है कि आज़ादी का सूरज निकलने से पहले वह सबको अलविदा कहकर चले गए तथा पूरे जीवन भर अपने साहित्य द्वारा जनता को जगाने तथा अंग्रेज़ी शासन के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। किसान, मज़दूर व निम्नवर्ग के लोगों के प्रति उनके दिल में सदैव अच्छी भावनाएँ रही तथा वे हमेशा उनकी हिमायत करते रहे। स्वतंत्रता की लड़ाई में उनके योगदान को हम लोग हमेशा याद करेंगे उनकी सोच आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी वह 50 वर्ष पूर्व थी और यदि आज वह हमारे बीच होते तो वैसे ही होते। यद्यपि पूरा एशिया आज स्वतंत्र हो चुका है तथा इस स्वतंत्रता को बड़ी धूमधाम से मनाता है। किन्तु जीवन की जिन कड़वी सच्चाईयों की ओर प्रेमचन्द ने हमारा ध्यान आकर्षित किया वह आज भी वैसी ही है ज़रा भी कम नहीं हुई और जब तक परिस्थितियाँ पूरी तरह नहीं बदल जाती और हालात इसी तरह रहते हैं उनका साहित्य हमारी प्रज्ञा को जगाता रहेगा और हमें सदैव उन परिस्थितियों से लड़ने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देगा और साथ ही मानवीय स्वाधीनता के संघर्ष को हमेशा ज़िन्दा रखने के लिए हमें प्रोत्साहित करता रहेगा।

प्रेमचन्दयुगीन साहित्यिक परिदृश्य

प्रेमचन्द साहित्य को समय का आईना कहते थे वह मानते थे कि समाज की हर परिस्थितियों का चित्रण साहित्य में आइनें की तरह साफ़ दिखाई देता है।

नरेन्द्र कोहली के अनुसार–"वाणी के समस्त आलेख का नाम वाङ्मय है। आज तक किसी भी रूप में किसी भी प्रयोजन से कुछ भी अंकित किया गया वह वाङ्मय की परिधि में आता है।"[70] इस प्रकार वाणी की मौखिक व समस्त लिखित व्यवस्था का नाम साहित्य है।

शचीरानी गुर्टू लिखती हैं–"प्रेमचन्द में उनके कथाकार का व्यापक धरातल पर मानवीय संवेदना ही उनका प्रमुख तत्त्व है जो उनके कृतित्त्व को महानता प्रदान करता है। यही तत्त्व कथावस्तु के विभिन्न स्तरों में संचरण करता हुआ नाना रूपों की सांगोपांग संश्लिष्टता का द्योतक है।"[71] अतः प्रेमचन्द साहित्य में मानवीय संवेदना को प्रमुख तत्त्व मानते हैं जो कि उनके कृतित्त्व को महानता प्रदान करता है।

शचीरानी गुर्टू लिखती हैं–"साहित्यिक प्रेमचन्द का वास्तविक विकास प्रथम महायुद्ध के बाद सन् 1919 से 1929 के बीच हुआ। प्रेमचन्द प्रायः 200 छोटी–छोटी कहानियों और दस उपन्यासों के लेखक हैं। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में इनके सभी उपन्यासों का अनुवाद हो चुका है। इनकी अधिकांश रचनाएँ भारतीय ग्राम्य जीवन और औपनिवेशिक जीवन को लेकर ही लिखी गयी है।"[72] अतः प्रेमचन्द का वास्तविक साहित्यिक जीवन प्रथम महायुद्ध के बाद प्रारम्भ हुआ इनके साहित्य में भारतीय किसानों का जीवन तथा औपनिवेशिक जीवन का चित्रण अधिकांश रूप में देखने को मिलता है। इनकी ज़्यादातर रचनाएँ इसी पर आधारित हैं।

नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार–"प्रेमचन्द ने युग की चुनौती को स्वीकार किया और समयानुकुल साहित्य की रचना की। वास्तविक बात यह है कि समय ने प्रेमचन्द का साथ उतना नहीं दिया जितना प्रेमचनद ने समय का साथ दिया है।"[73]

इस प्रकार प्रेमचन्द अपने युग की चुनौती के साथ चलते रहे उनके साहित्य की रचना समय के अनुकूल रही तथा उन्होने अपने युग की हर परिस्थिति का चित्रण अपने साहित्य में किया। यही कारण है कि प्रेमचन्द साहित्य को समय का आइना कहते थे।

डॉ0 नरेन्द्र कोहली का विचार है–"प्रेमचन्द ने साहित्य को उसके व्यापकतम रूप से ग्रहण किया है और उसके समस्त विस्तार–प्रस्तार को मान्यता दी है।"[74] अतः प्रेमचन्द ने सदैव साहित्य को व्यापक रूप में देखा और उसे आगे बढ़ाने पर हमेशा ज़ोर देते रहे।

डॉ0 नरेन्द्र कोहली का मत है–"प्रेमचन्द ने समग्र साहित्य के विषय में सामान्य एवं व्यापक विचार अभिव्यक्त करने के पश्चात् कुछ ही विधाओं पर अपने विशिष्ट विचार प्रकट किए। प्रेमचन्द पद्यकार न होकर गद्यकार थे। गद्य में भी प्रेमचन्द ने केवल उपन्यास तथा आख्यायिका विधाओं को ही अंगीकार किया है। प्रेमचन्द की एक सीमा और भी है उनका युग संक्रान्ति का युग था वस्तुतः प्रेमचन्द जनता को जाग्रत करना चाहते थे यही कारण है कि कतिपय विचारों के प्रचार में इनकी अधिक रूचि थी।"[75] इस प्रकार प्रेमचन्द के साहित्य का विषय सामान्य एवं व्यापक दोनों ही रहा है उन्होंने उपन्यास तथा आख्यायिंकाओं को महत्ता दी। इनके साहित्य की कुछ सीमाएँ भी थीं तथा वे साहित्य के प्रचार–प्रसार द्वारा जनता को

जाग्रत करना चाहते थे क्योंकि उनका युग संक्रान्ति का युग था जो अनेकों परिस्थितियों से दो–चार हो रहा था जिसे वे भली–भाँति देख व समझ रहे थे।

डॉ0 नरेन्द्र कोहली अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द' में लिखते हैं– "प्रेमचन्द के साहित्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत निम्न अंग आ सकते हैंः–

1. साहित्य हेतु
2. साहित्य प्रयोजन
3. साहित्य के लक्षण : स्वरूप तथा परिभाषा
4. साहित्य का क्षेत्र (साहित्य का समाज, राजनीति तथा इतिहास से सम्बन्ध)
5. शैली तथा भाषा
6. साहित्यकार का दायित्त्व
7. साहित्य के आदर्श, यथार्थ अथवा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद
8. उपन्यास
9. कहानी"[78]

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्रेमचन्द के साहित्य के महत्त्वपूर्ण विषय रहे हैं जो कि उनके साहित्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत आते हैं। बिना इन साहित्य सिद्धान्तों के किसी भी साहित्य की रचना निरुद्देश्य लगती है।

प्रेमचन्द ने अपने प्रारम्भिक लेखों में जनता को जागरुकता के संकेत दिए हैं। अपने एक लेख में वे लिखते हैं कि–"आबादी का वह बड़ा हिस्सा जो देहातों में आबाद है मुल्क और कौमी मामलों की तरफ से बेखबर है। ऐसी दशा में पढ़े–लिखे लोगों के सहारे सफ़लता की आशा सम्भव नहीं है।"[77] अतः देश की जनसंख्या का

एक बड़ा भाग देहातों में निवास कर रहा था जो कि देश के अन्य मामलों से बेख़बर था ऐसी स्थिति में केवल शिक्षित लोगों से सफ़लता की आशा नहीं की जा सकती। देश की सफ़लता के लिए प्रत्येक व्यक्ति का एक–दूसरे के साथ सहयोग आवश्यक था।

डॉ0 शीला गुप्ता के अनुसार–"असरारे मुआविद उर्फ 'देवस्थान रहस्य' (जो अक्टूबर 1962 में प्रथम बार हिन्दी जगत में प्रस्तुत हुआ है) समाज में धर्म की ओट में होने वाली विकृत लीलाओं का चित्रण मात्र है। यह उर्दू एवं क्लिष्ट फारसी शब्दों से पूर्ण प्रथम उपन्यास है जो अक्टूबर 1903 में बनारस से निकलने वाले उर्दू साप्ताहिक 'आवाज़े ख़ल्क़' में सिलसिलेवार निकला था।"[78] अतः प्रेमचन्द कृत इस उपन्यास ने देश में हो रहे धर्म की आड़ में विकृत लीलाओं को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया।

डॉ0 शीला गुप्ता लिखती हैं–"प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन जिस समय आरम्भ हुआ (1899–1905) उस समय लार्ड कर्ज़न और लार्ड मिन्टो की नौकरशाही सरकारी दमन नीति के सहारे भारतीय जनता पर कठोर प्रहार कर रही थी। उधर कांग्रेस (सन् 1885) भी सचेत थी। प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन जब प्रारम्भ हुआ उस समय देश में अनेक प्रत्यक्ष और परोक्ष आन्दोलन चल रहे थे और ये आन्दोलन देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर विशेष प्रभाव डाल रहे थे।"[79] अतः प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन देश के अत्यन्त क्रान्तिकारी माहौल के मध्य शुरू हुआ जिस समय देश के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों में अनेकों उतार–चढ़ाव व परिवर्तन हो रहे थे।

डॉ0 शीला गुप्ता के मतानुसार–"प्रेमचन्द का लिखना उनका जीवन था सुख और शान्ति थी और उनके हृदय और मन की सच्ची भावना थी। उनके सुपुत्र श्री अमृतराय ने उन्हें ठीक ही 'कलम का सिपाही' कहा है।"[80] अतः उनका लिखना पढ़ना सदैव उनके जीवन से जुड़ा रहा और उन्होंने अपने मन तथा हृदय की भावनाओं को अपने साहित्य द्वारा यथार्थ रूप दिया जो कि आज हमारे समक्ष उनके साहित्य के रूप में मौजूद है।

डॉ0 शीला गुप्ता का विचार है–"प्रेमचन्द का यह लेखन कार्य इस प्रकार उनकी नौकरी और दौरो के समय भी चलता रहता था। प्रेमचन्द राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव में आए और 1904 में ही 'सोज़ेवतन' से पूर्व (जो 1909 में लिखी गई थी) कुछ राष्ट्रीय जागरण के लेख प्रस्तुत किए।"[81] प्रेमचन्द अपनी नौकरी के दौरान भी अपना साहित्यिक कार्य बराबर करते रहे तथा उनके ऊपर राष्ट्रीय चेतना का पूरा प्रभाव था यह बात उनके लेखों द्वारा सिद्ध होती है।

डॉ0 शीला गुप्ता लिखती हैं–"व्यक्ति और समष्टि के जीवन में जो दुःख है उससे वे परिचित थे। स्वभाव से चिन्तनशील थे। अतः उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन में पायी जाने वाली व्यापक वेदना पर गम्भीरता से विचार किया। उन्होंने मानव के दुःख के मूल कारणों की ओर ध्यान दिया। जिन समस्याओं को उन्होंने अपने कथा–साहित्य में स्थान दिया। उनका समाधान खोजने का भी प्रयत्न किया। प्रारम्भ में ही प्रेमचन्द ने अपनी साहित्य–साधना का उददेश्य बहुत गम्भीर, पवित्र, व्यापक और ऊँचा रखा।"[82] इस प्रकार प्रेमचन्द अपने जीवन के साथ–साथ साहित्य में भी सदैव प्रगतिशील रहे सांसारिक दुःखों से वे भली प्रकार परिचित थे इनकी आकृति जैसी सरल थी, स्वभाव जैसा सरल था वैसे ही उनका साहित्य भी था।

उन्होंने मानव दुःख के कारणों को समझा तथा उसकी व्यापक वेदना को अपने साहित्य में उतार दिया। उनके साहित्य में समस्याएँ तथा उसका समाधान दोनों ही मौजूद हैं। शुरू से ही उन्होंने अपनी साहित्य साधना को शीर्ष स्थान पर रखा जो आज तक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में शीर्ष स्थान पर ही है।

डॉ0 शीला गुप्ता का विचार है–"प्रेमचन्द की रचना का उद्देश्य 'मानवतावाद' था। मानव बना रहे, यही प्रेमचन्द का अन्तिम उद्देश्य और लक्ष्य था।"[83] प्रेमचन्द साहित्य का उद्देश्य व लक्ष्य सदैव मानव जीवन की सफ़लता तथा मानवतावाद के लिए रहा है जिसे उन्होंने अपने कथा–साहित्य द्वारा सिद्ध कर दिखाया तथा वे सदैव इस बात पर ज़ोर देते रहे कि भारतीय जनता में नये सांस्कृतिक जागरण का विकास हो तथा प्रगतिशील साहित्य का निर्माण और विकास हो सके।

मदन गोपाल के अनुसार–"Premchand agreed with all the aims, except the one regarding the script, about which he held that a properly reformed Devanagari script could meet the need. He wished the association success and long life. The literature envisaged by the association, he said, was precisely what India needed. "Hans too was started with identical aims"[84]

[अपने लेखन कार्य के अलावा प्रेमचन्द कुछ लक्ष्यों को लेकर चले। उनका मानना था कि देवनागरी लिपि कुछ सुधार के बाद साहित्य की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है उन्होंने साहित्य की दृष्टि से संगठनों को आगे जीवन में बढ़ने की शुभकामनाएँ दीं और संगठन को देखकर कहा कि इसी की भारत देश को आवश्यकता है।] अतः प्रेमचन्द की दृष्टि साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र की ओर थी व

साहित्य के क्षेत्र में सदैव सजग रहे व साहित्य के माध्यम से समाज को उन्नति की दिशा दिखाने का प्रयास किया।

मदन गोपाल के अनुसार–"February 14, 1936 Premchand attended a meeting at Sajjad Zaheer's house to discuss the formation of the Indian Progressive writers Association in India."[85]

[14 फरवरी सन् 1936 में प्रेमचन्द सज्जाद ज़हीर के घर एक सभा में उपस्थित हुए और भारतीय उन्नतशील लेखक संगठन बनाने की घोषणा की। जो कि साहित्य के क्षेत्र व उसकी उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक थी।] अतः प्रेमचन्द साहित्य के क्षेत्र को सदैव आगे बढ़ाने के लिए शैक्षिक संगठनों को प्रोत्साहित करते रहे क्योंकि वे जानते थे कि शिक्षा के महत्त्व को समझने व उसे आगे बढ़ाने के लिए शैक्षिक संगठनों की आवश्यकता है।

डॉ0 रामविलास शर्मा के अनुसार–"प्रेमचन्द दुःखी हिन्दुस्तान के गरीबों के लेखक थे। उनका साहित्य तमाम पीड़ितों का मानसिक संबल है।"[86] अतः प्रेमचन्द ने जो लिखा वह सदैव ग़रीबों के हित में लिखा वह उनकी मानसिक पीड़ा से परिचित थे। किसान, मज़दूर व दलित वर्ग आदि के जीवन की समस्याओं को प्रेमचन्द ने अपने साहित्य द्वारा जनता के सामने प्रस्तुत किया।

डॉ0 मुरली मनोहर सिंह के अनुसार–"लेखक के साहित्यिक रचना करते समय कला साहित्यशास्त्र के विचार किसी ने किसी रूप में उसका निर्देशन करते हैं। कुछ लेखक पहले कला साहित्यशास्त्र के सिद्धान्तों का अध्ययन करते हैं, फिर साहित्यिक रचना करने लगते है और कुछ लेखक सिद्धान्तों का अध्ययन किए बिना ही साहित्यिक रचना करना शुरू कर देते हैं। उनकी कला साहित्यशास्त्र के

सिद्धान्तों की केवल एक अस्पष्ट धारणा होती और सिद्धान्तों की निर्देशक भूमिका भी अपेक्षाकृत स्पष्ट नहीं होती। इन दो तरह के लेखकों के अलावा कुछ और ऐसे लेखक भी हैं जो साहित्यिक रचना करने के साथ व्यवहार का निर्देशन करते हैं और रचनात्मक व्यवहार उनके सिद्धान्तों को समृद्ध बनाता है (वे इन सिद्धान्तों को लिख भी सकते हैं और नहीं भी) प्रेमचन्द इन्हीं तीसरी तरह के लेखकों में से हैं।"[87] अतः साहित्य सिद्धान्तों में प्रेमचन्द का साहित्य व्यवहार का निर्देशन करता है तथा साथ ही रचना सिद्धान्त का भी। जोकि साहित्य रचना के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

डॉ0 मुरली मनोहर का विचार है–"साहित्यिक समीक्षा का उनका सबसे पहला लेख 'शरर और सरशार' 1906 में 'उर्दू–ए–मुअल्ला' में प्रकाशित हुआ। इसके बाद के 20 वर्षों के दौरान उनके सिद्धान्त सम्बन्धी लेख एक के बाद एक प्रकाशित होते रहे और देहान्त होने से पहले के कुछ वर्षों में उन्होंने साहित्यिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित अपने अनेक महत्त्वपूर्ण लेख लिखे तथा ये उनके साहित्यिक दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।"[88] अतः उनके अधिकतर लेख व रचनाएँ साहित्यिक दर्शन व सिद्धान्तों द्वारा जगमगाती रही।

डॉ0 मुरली मनोहर लिखते हैं–"यह ध्यान देने योग्य है कि प्रेमचन्द की साहित्य सम्बन्धी व्याख्याएँ सिर्फ साहित्य की शैली, बाहरी रूप आदि पर बहस न होकर सामाजिक पृष्ठभूमि, साहित्य के लक्ष्य, समाज में साहित्य की भूमिका, सामाजिक जीवन और साहित्यिक रचना के प्रति लेखक के रुख से जुड़ी हुई हैं।"[89] अतः प्रेमचन्द के साहित्य का सम्बन्ध केवल बाहरी रूप यानी (शैली, भाषा, छन्द) आदि से न जुड़कर बल्कि सामाजिक पृष्ठभूमि से जुड़ा रहा है साहित्य समाज का

दर्पण होता है। उसका सम्बन्ध सामाजिक जीवन से है तथा वह जीवन के यथार्थ को स्पष्ट रूप से दिखाता है। अतः साहित्य हमारे जीवन से किसी भी प्रकार से अलग नहीं है प्रेमचन्द ने इन्हीं बातों पर हमेशा ज़ोर दिया।

डॉ0 मुरली मनोहर के अनुसार–"प्रेमचन्द के लेखों में शायद अधिक चर्चा साहित्य की भूमिका और उद्‌देश्य की है। सर्वागींण दृष्टि से देखें तो उनके प्रकाश डालने की भूमिकाओं और उद्‌देश्यों में ये विषय सम्मिलित है। साहित्य की मनोरंजकता, साहित्य का सामाजिक महत्त्व, साहित्य की उपयोगिता, साहित्य की सच्चाई, सद्‌भाव और सौन्दर्य, साहित्य का नीतिशास्त्र से सम्बन्ध वगैरह 'साहित्य और मनोविज्ञान' में उन्होंने कहा, "साहित्य हमारी सौन्दर्य भावना को सजग करने की चेष्टा करता है।"[90] अतः प्रेमचन्द ने साहित्य को सौन्दर्य के साथ जोड़ा और कहा कि जिसमें साहित्य को सौन्दर्य से जोड़ने की शक्ति होती है साथ ही सौन्दर्य भावना को प्रकट करने की भावना प्रबल होती है वही साहित्य का उपासक होता है। उनके अधिकतर लेख साहित्य की चर्चा पर ही आधारित है तथा साहित्य के उपर्युक्त सभी विषयों को वह साहित्यिक रचना के लिए आवश्यक तत्त्व मानते है।

डॉ0 मुरली मनोहर का विचार है–"साहित्य का उद्‌देश्य' में उन्होंने और स्पष्ट रूप से कहा, "हम जीवन में जो कुछ देखते हैं या जो कुछ हम पर गुज़रती है वही अनुभव और वही चोंटे कल्पना में पहुँचकर साहित्य सृजन से प्रेरणा करती है।"[91] प्रेमचन्द ने साहित्य को जीवन के अनुभवों के साथ जोड़कर देखा और इसी बात की प्रेरणा भी दी।

डॉ0 मुरली मनोहर लिखते हैं–"साहित्यकार के सम्बन्ध में प्रेमचन्द कहते हैं साहित्यकार तो वही हो सकता है जो दुनिया के सुख–दुःख से सुखी या दुःखी हो

सके और दूसरों में सुख या दुःख पैदा कर सके।"[92] अतः प्रेमचन्द साहित्यकार को दुनिया के साथ तथा दूसरों के सुख–दुख से जोड़ते है जब तक साहित्यकार में यह भावना नहीं होगी तब तक वह एक उच्च कोटि के साहित्य की रचना नहीं कर सकता है।

उपर्युक्त सन्दर्भों तथा तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि साहित्यिक रचना एक लेखक के जीवन का आईना होती है प्रेमचन्द के लिए उनके साहित्य सिद्धान्त एक आईने की तरह थे जिसमें समय का हर उतार–चढ़ाव यथार्थ रूप में नज़र आता रहा। उन्होंने जीवन से साहित्य को जोड़कर साहित्य की भूमिका, उद्देश्य, उपन्यास, कहानी, लेखक के सौन्दर्य दर्शन तथा साहित्य से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर अपने भाव तथा विचार प्रकट किए और अपने लेखन द्वारा उनका समाधान बताने का भी प्रयास किया है। लेकिन आज यह बात भी नकारना दुष्कर है कि परिस्थितियां बहुत बदल चुकी है उनके विचार और दृष्टिकोण नए नहीं रह गये हैं उनके स्थान पर नए विचार समयानुसार सामने आ रहे हैं लेकिन यह बड़े गर्व का विषय है कि उनके बहुत से बुनियादी सिद्धान्त व विचारों की व्याख्या मौजूदा ज़माने की परिस्थितियों तथा भारतीय साहित्य के लिए यथापूर्ण, व्यवहारिक महत्त्व रखती है तथा भविष्य में भी रखेंगी और हमें मानवतावाद का सन्देश देती रहेंगी।

सन्दर्भ : –

1. शर्मा, डॉ0 रामविलास, प्रेमचन्द और उनका युग, 1967, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 7
2. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 357
3. गुप्त, रामदीन, प्रेमचन्द और गांधीवाद, 1988, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 105
4. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 377
5. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, कांग्रेस का इतिहास, 1989, पंचशील प्रकाशन जयपुर, पृष्ठ 141
6. राजकुमार, भारत का राजनैतिक इतिहास, 1962, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृष्ठ 214
7. हरिभाऊ उपाध्याय, (सम्पादक), मेरी कहानी, ग्यारहवाँ संस्करण, 1965, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृष्ठ 55–56
8. अमृतराय, कलम का सिपाही, 1962, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 80
9. अमृतराय, (संकलनकर्ता) चिट्ठी–पत्री भाग 2, 1962, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 256–257
10. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 444

11. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 443

12. गुप्त, डॉ0 श्रीमती शीला, प्रेमचन्द और उनका साहित्य, 1972, साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड, इलाहाबाद 3, पृष्ठ 34

13. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 447

14. हरिभाऊ उपाध्याय, (सम्पादक), मेरी कहानी, ग्यारहवाँ संस्करण 1965, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृष्ठ 187–88

15. अमृतराय, (संकलनकर्ता), चिट्ठी–पत्री भाग–2, पृष्ठ 77

16. पुरी, डॉ0 रक्षा, प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज, 1970, आत्माराम एण्ड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 235

17. वही, पृष्ठ 235

18. प्रेमचन्द, वरदान, 1999, मनोज पब्लिकेशन्स, मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली, पृष्ठ 68

19. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, धीरज बुक्स, गांधी मार्ग, मेरठ, पृष्ठ 51

20. वही, पृष्ठ 86

21. प्रेमचन्द, सेवासदन, 2005, मनोज पब्लिकेशन्स, चांदनी चौक, दिल्ली, पृष्ठ 8

22. प्रेमचन्द, रंगभूमि, रजत प्रकाशन, देहली गेट, मेरठ, पृष्ठ 4

23. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 357

24. गुप्त, डॉ0 श्रीमती शीला, प्रेमचन्द और उनका साहित्य, 1972, साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड, इलाहाबाद 3, पृष्ठ 40

25. सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द, 1994, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 119

26. गुप्त, रामदीन, प्रेमचन्द और गांधीवाद, 1988, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 124

27. सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द, 1994, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 120

28. वही, पृष्ठ 120–121

29. गुप्त, डॉ0 श्रीमती शीला, प्रेमचन्द और उनका साहित्य, 1972, साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड, इलाहाबाद 3, पृष्ठ 41

30. अमृतराय, (संकलनकर्ता), चिट्ठी–पत्री भाग–2, पृष्ठ 43

31. वही, पृष्ठ 63

32. वही, पृष्ठ 63

33. वही, पृष्ठ 18

34. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 301

35. गुप्त, डॉ0 श्रीमती शीला, प्रेमचन्द और उनका साहित्य, 1972, साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड, इलाहाबाद 3, पृष्ठ 27

36. वही, पृष्ठ 26

37. पाण्डेय, डॉ0 कृष्णचन्द्र, प्रेमचन्द के जीवन दर्शन के विधायक तत्व, संस्करण, 1970, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 152

38. रामचन्द्र टण्डन, (सम्पादक), हिन्दुस्तान की कहानी, 1947, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 414

39. वेणी शंकर झा, (सम्पादक), नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक 1, 1980, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ 91

40. अमृतराय, (संकलनकर्ता), चिटठी–पत्री भाग–2, पृष्ठ 237

41. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद, अवस्थी रेखा, प्रेमचन्द विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, 2006, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 23

42. गोपाल, मदन, मुंशी प्रेमचन्द ए लिटरेरी बायोग्राफी, 1964, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, दिल्ली, पृष्ठ 316

43. कोहली, नरेन्द्र, प्रेमचन्द, 1991, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 48–49

44. वही, पृष्ठ 50

45. वही, पृष्ठ 50

46. वही, पृष्ठ 55

47. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद, अवस्थी रेखा, प्रेमचन्द विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, 2006, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 24

48. शर्मा, डॉ0 रामविलास, सन् सत्तावन की राज्यक्रान्ति और मार्क्सवाद, द्वितीय संस्करण, 1990, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (भूमिका)

49. गुप्त, मन्मथनाथ, क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक इतिहास, 1980, निधि प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 19

50. प्रुथी, डॉ0 आर0के0, आधुनिक भारत (1919–1939) राष्ट्रवादी साहित्य एवं क्रान्तिकारी आन्दोलन, 2005, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, पृष्ठ 57

51. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद, अवस्थी रेखा, प्रेमचन्द विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, 2006, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 25

52. वही, पृष्ठ 25

53. वही, पृष्ठ 25

54. वही, पृष्ठ 25–26

55. वही, पृष्ठ 28

56. वही, पृष्ठ 28

57. वही, पृष्ठ 28

58. वही, पृष्ठ 28–29

59. वही, पृष्ठ 31

60. वही, पृष्ठ 33

61. सिंह, डॉ0 कुँवरपाल, प्रेमचन्द और जनवादी साहित्य की परम्परा, 1980, भाषा प्रकाशन, 453/नई दिल्ली, पृष्ठ 44

62. वही, पृष्ठ 45

63. वही, पृष्ठ 46–47

64. मोहन कान्ति, प्रेमचन्द और अछूत समस्या, 1982, जनसुलभ साहित्य प्रकाशन, गोकुलपुर, दिल्ली 110097, पृष्ठ 27

65. वही, पृष्ठ 27

66. वही, पृष्ठ 29

67. वही, पृष्ठ 29

68. वही, पृष्ठ 30

69. वही, पृ0 30–31

70. कोहली, नरेन्द्र, प्रेमचन्द, 1991, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2, पृष्ठ 101

71. गुर्टू, डॉ0 शचीरानी, प्रेमचन्द व्यक्तित्व और कृतित्व, 1970, इन्डिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 6

72. वही, पृष्ठ 83

73. वाजपेयी, डॉ0 नन्ददुलारे, हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, 1962, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 85

74. कोहली, डॉ0 नरेन्द्र, 1991, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 110

75. वही, पृष्ठ 111

76. वही, पृष्ठ 111–112

77. अमृतराय, (सम्पादक), प्रेमचन्द : विविध प्रसंग (भाग–1) 1962, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 17

78. गुप्त, डॉ0 शीला, प्रेमचन्द और उनका साहित्य, 1972, साहित्य भवन प्रा0लि0, इलाहाबाद, पृष्ठ 24

79. वही, पृष्ठ 25

80. वही, पृष्ठ 28

81. वही, पृष्ठ 28

82. वही, पृष्ठ 29

83. वही, पृष्ठ 30

84. गोपाल, मदन, मुंशी प्रेमचन्द ए लिटरेरी बायोग्राफी, 1964, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, दिल्ली, पृष्ठ 413

85. वही, पृष्ठ 413

86. शर्मा, डॉ0 रामविलास, प्रेमचन्द और उनका युग, 1967, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 28

87. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद, अवस्थी रेखा, प्रेमचन्द विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, 2006, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 401

88. वही, पृष्ठ 402

89. वही, पृष्ठ 402

90. वही, पृष्ठ 405

91. वही, पृष्ठ 409

92. वही, पृष्ठ 414